सुन्दरकाण्ड

"भाव विवेचन"

"हनुमान्, जो मान, महाबलवान्, पदारथ चारिउ पावन है"

प्रेरणास्रोतः

'शिवावतार'

हनुमान जी

द्वारा :

नित्यानन्द मिश्र

पूर्व आचार्य,

धर्म सभा इण्टर कालेज

सैदापुर भाऊ, खीरी

सरस्वती वन्दनम्

जयतु जय जय शारदे माँ! श्वेत पदम् विहारिणी माँ!
जयतु शुभवर दायिनी माँ! हस्तपुस्तक धारिणी माँ!! ।। जयतु०।।

वाङ्मयि! वागीश्वरी! वर देहि, वीणा पाणिनी माँ!
है सघन अज्ञानकातम-तू प्रकाश प्रसारिणी माँ! ।। जयतु०।।

प्रणत जन मन मोद दायिनि! ओ जगत् की तारिणी माँ!
जगत् का कल्याण कर माँ! विध्न बाधा हारिणी माँ! ।। जयतु०।।

कर दया सुखदायिनी-सी छाँव की विस्तारिणी माँ!
जयतु मंगल कारिणी - वात्सल्य की अवतारिणी माँ।। ।। जयतु०।।

गणपति स्तवनम्

1

हे गणनाथ विनायक गणनायक शशिभाल-हे०।।=।।
संकटनाशन विघ्नविनाशन विघ्न हरहु तत्काल।हे०।
तेज सिंदूर रूप लम्बोदर निखिल जगत प्रतिपाल।हे०।
गणपति प्रियपति निधिर्पात ऋधिपति सिधिपति मंगलमाल।हे०।
नाथ! साम्बशिव सुर मुनि युत होइ पुरवहु साध कृपाल।हे०।

2

गणेशं गणपतिं गणनायकं गुणनायकं वन्दे
गणाधीशं गुणाधीशं गुणातीतं सदा वन्दे ।। १।।
गुणाधारं गुणेशं गजमुखं गं सर्वदा वन्दे
गजाननधारिणं गौरीसुतं गेयं सदा वन्दे ।। २।।
गुणज्ञं गतिकरं गतिकारिणं देवं सदा वन्दे
गुणं गुणकारकं गुणधारकं देवं मुदा वन्दे ।। ३।।
गणानां गणपतिं वन्दे गिरिजया लालित वन्दे
गिरिवरप्रिय सुतावत्सं गिरिजया पालितं वन्दे ।। ४।।
गतिज्ञ गतिप्रदं गतिदं गजाननवक्त्र संयुक्तम्
गुणागारं गुणाकारं गुणानां गुणपति वन्दे ।। ५।।
गुणकरं गुणवरं गुणिनं सदा गौरीसुतं वन्दे
गुणातीतं सदागीतं ह्रदा गिरिजासुतं वन्दे ।। ६।।
पठति यः गणपतिस्तवनं शुभं शुचिदायिनं रम्यम्
भवेत् विद्या सदा लक्ष्मी च विलसति तत्र निर्विघ्नम् ।। ७।।
इदं गणनायकस्तवनं
सदा सुखदायिनं सौम्यम्
मुदा पठतेच संश्रणुते
च लभते नित्यमानन्दम् ।। ८।।

राम नाम वन्दन

पुकारे मन बावरा! जै जै जै सियाराम!! पुकारे मन॰ । पुकारे।
दीवाना प्रभु! रावरा! जै जै जै सियाराम!! !! पुकारे मन बावरा प्रभु!!

सोना चाँदी ना मन भावै
हीरा मोती ना ललचावै

रुचइ सोई साँवरा! जै जै जै सियाराम!! !! पुकारे मन बावरा प्रभु!! ।।१।।

स्वर्ग न मांगौं मोक्ष न मांगौं
सोवऊँ जागौं चरननि लागौं

पुलकु वरु पाँवरा! जै जै जै सियाराम!! !! पुकारे मन बावरा प्रभु!! ।।२।।

तुमरी मूरति उरमा धारौं
चौमुख दियना हंसि हंसि बारौं

डोलाऊँ प्रभु! चाँवरा!! जै जै जै सियाराम!!

पुकारे मन बावरा! जै जै जै सियाराम!!
दीवाना प्रभु! रावरा! जै जै जै सियाराम!! !! पुकारे मन बावरा प्रभु!!

बोलो सियापति रामचन्द्र की जै

पवन सुत हनुमान की जै

श्री गणेशाय नमः
श्री दुर्गायै नमः
श्री शंकरः शं करोतु

ॐ आञ्जनेयाय विद्महे। श्री वायु पुत्राय धीमहि । तन्नो हनुमान प्रचोदयात

धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि महिमा पार ना परै।
रघुवर हुलसत जसु गाई-कि-महिमा पार ना परै।।

बालि सुग्रीव को था सताता
भाई का भूलकर पुण्य नाता

प्रभु से करवाई मिताई-कि-महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि-महिमा पार ना परै।।१।।

नाथ! लक्षिमन की मुरछा दुराई
राम बोले है उर से लगाई

तुम प्रिय भरतहि समभाई-कि-महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि-महिमा पार ना परै।।२।।

तेज तुम्हरो सकै को सम्हारी
काज बिगरे सकौ तुम सँवारी

सानुजसिय उर में बिठाई-कि-महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि-महिमा पार ना परै।।३।।

लाँघि सागर दियो लंक जारी
दी दिलासा, सिया थी दुखारी

भये अजर अमर वर पाई-कि महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि महिमा पार ना परै।।४।।

साधु सन्तन के रखवारे प्यारे
राम द्वारे, सिया के दुलारे

रहे सहस बदन जसु गाई-कि-महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि महिमा पार ना परै।।५।।

नाभि से शिव की तुम नाथ आये
शिव ही साक्षात् कपि रूप धाये

तोरे भजन सुनत रघुराई-कि-महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि महिमा पार ना परै।।६।।

राम के काज बानर बने हो
जानकी काज मच्छर बने हो

कउनु कउनु रूप तुमरे गिनाई-कि-महिमा पारना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि महिमा पार ना परै।।७।।

तुलसी को रामसे है मिलाया
उनसे चन्दन का टीका कराया

तुमका प्रभु! कउनु भुलाई ? -कि-महिमा पार ना परै।।८।।

जानकी के लला नाथ पावन
ताप संत्रास भय के नसावन

भूत प्रेत सब रहे भय खाई-कि-महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि-महिमा पार ना परै।।९।।

दीजियो प्रभु! न हमको विसारी
तोरे कारन है सृष्टी सुखारी

तोरे भजन न नाथ! अघाई-कि-महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि-महिमा पार ना परै।।१०।।

नाथ! तुमसे न कुछ आज माँगू
कामनां सारी दुनिया की त्यागूँ

ॐ शिव ॐ शिव रहि जाई-कि-महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि-महिमा पार ना परै।
रघुवर हुलसत जसुगाई-कि-महिमा पार ना परै।
धनि धनि धनि ओ कपिराई-कि-महिमा पार ना परै

बोलो हनुमन्त लाल की जै हो!

जै हो!!

जै हो!!!

हनुमद् वन्दन

1

शिव नाभि प्रसूत प्रभूत अभूत प्रभंजनपूत महाबलवीरा,
सिय के पिय के हिय के जिय के प्रिय के शरिनन्दन वज्रशरीरा,
रघुनन्दन वन्दन! अञ्जनिनन्दन!! नावउंमाथ, धरावहु धीरा,
हनुमन्त अनन्त महाबलवन्त जपन्त तुरन्त नसावहु पीरा।।

2

सोक नसावन पावन है-दुख दावन है यह वज्र शरीरा
है हनुमान समान न आन जहान जोध्यान धरै धरि धीरा
तेज प्रताप अभाप हैं, आप के जाप से व्याप न ताप सरीरा
राम ललाम महा अभिराम के नाम के जाम पियावहु वीरा।।

हनुमान जी की आरती

1

आरति हर! तोरी आरती उतारुँ। आरति हर०।
रामहि चन्दन, रामहि वन्दन अञ्जनिनन्दन तुम पर वारुँ।।आरति हर०।।१।।
जै भवभंजन! वीर प्रभजंन। चौमुख दियना हँसि हँसि वारुँ।।आरति हर०।।२।।
सिद्धि प्रदाता! बुद्धि विधाता!! संकट त्राता!! को उरधारुँ।।आरति हर०।।३।।
राम के ताग में, राम के रांग में पोइ के माला गरे विचडारुँ।।आरति हर०।।४।।
गुन गन गाइके-पदरजपाइके-माथे लगाइके भवरुज जारु।।आरति हर०।।५।।
सिय़ाराम सियाराम अभिराम अविराम हियरे बसाइके तन मन वारुँ।आरति हर०।।६।।

2

सब मिलिकै तोरी आरति गावैं - सब मिलिकै तोरी आरति गावैं ।। सब मिलि०।।
सन्तत रामहिराम उचारत - संकट ते हनुमान छोड़ावैं ।। सब मिलि०।।
सीय लखन रघुवर उरधारत - सारद सेष सुजसु तोरा गावैं ।। सब मिलि०।।
बिगरे सिंगरे काज सवाँरत - रामु प्रसंसहि हियरे लगावैं ।। सब मिलि०।।
भूत पिशाच नाम सुनि भाजत - राहु सनीचर हूँ भय खावैं ।। सब मिलि०।।
अञ्जनिनन्दन! हे जगवन्दन! - को महिमा तुमरी कहिपावै ।। सब मिलि०।।
जानकि नाथ धरे कर पंकज, सीस असीस अघाइ लुटावैं ।। सब मिलि०।।
मुदरी डारि जपत सियरामा - पाइ संदेसो सिय हिय भावै ।। सब मिलि०।।
ओ बलवंका! जारि के लंका - डंका बजाई के संका न लावै ।। सब मिलि०।।
शक्ति लगत मुरछित भयै लक्षिमन - लै संजीवनि उड़तहि धावै ।। सब मिलि०।।
भरतहि जाइ संदेस सुनावत - लंकहि जीति अवध प्रभु आवैं ।। सब मिलि०।।
चौमुख दियना हँसि हँसि वारैं - माँगे विना मन वाँछित पावैं ।। सब मिलि०।।

"सत्यं - शिव - सुन्दरम्"

जो सत्य है, वह शिव है, वही सुन्दर है। सत्य सर्वदा कल्याणमय है, मङ्गलमय है। शिव ही कल्याण है। वह अनादि, अनन्त, चिरन्तन, शाश्वत है। सनातन है। प्रमाणों की परिधि से उन्मुक्त है। निरङ्कार है। निरञ्जन है। प्रमाणों का वह मोहताज भी नहीं। शान्ति कर है। स्वयं शान्त है। वही महिमान् है। शक्तिमान है। कुशल क्षेत्र भी वही है। मङ्गलकारक क्यों न हो जब वह स्वयं मंगलमय है। वही सर्वश्रेयस्कर है। मंगलमूल है। मंगलभवन है तभी तो अमंगल हारी है। उद्भव या प्रादुर्भाव या आविर्भाव (सर्जना), स्थिति या अस्तित्व युक्त (Existence) भरणपोषण (पालना), लय या लीन होना अर्थात् तल्लीनता संयुक्त तथा Disposing हरण, संहार आदि तत्वों को समोये बिन्दु मात्र ही है। निर्वाण-शान्ति का प्रदाता है, वेद-मूल है। वेदान्त है। वेद शीर्ष भी है। वेदमध्य भी है। रोम रोम मे बसा है। कन कन में समाया है। ब्रह्म उसी से है, वह ब्रह्म से नहीं। तभी तो परब्रह्म है। अक्षर भी है। बिन्दु भी है। बिन्दु सतत् विस्तारवान् है। उसे जानना असम्भव कदापि नहीं क्यों कि वह संभव है। उद्भव है। विभव है। प्रवाह है। जानने योग्य है, वेदितव्य है। आश्रय है। आश्रय स्थल है। आश्रयदाता है। अन्वय है। समन्वय है। तभी तो सामर्थ्यवान् है। सामर्थ्यवान ही सामर्थ्य दे सकता है। त्राता है। धाता है। कर्त्ता है-धर्ता है हर्ता भी है। भर्ता भी है। तभी तो पालक शक्ति का महत्व है। भरण पोषण का कोई अर्थ तभी तो सार्थक होगा। लेकिन अवगुण-अहङ्कार-दोष का हर्त्ता है। अस्तित्व का कर्ता है। श्रद्धा, विश्वास, कल्याण, उद्धार का प्रतिरूप है, अनुरूप है, समरूप है, तद्रूप है। धर्म है। धर्म का अन्तर्भाव है। धर्म का रक्षक है। अविनाशी है। अक्षर है। आलोकित है। अविनाशी है। आलोक है। तेज है। वर्णहीन है, नानावर्णयुक्त भी है। निराकार है। साकार है। रहस रचाता है। रहस्य भी है।

रहस्य युक्त भी है। रहस्य रहित भी है। बिन्दु होने से केन्द्र भी है। नाभि है। संरचना का मूल स्रोत है। स्वयंभू है। आत्मसात् भी है। केन्द्र से ही तो उनचासों दिशाओं के पवनगण का आविर्भाव स्वतः सिद्ध है। सप्तद्वीप इससे ओत प्रोत है। सप्तद्वीप इसमें रचे बसे हैं। सप्तपदी का साक्षीभाव भी है। वैश्वानर में 'र' होकर समाहित है। राम से है। रमा से है। चर में है। अचर में है। सप्तमातरः में तत्वगत है। तभी चराचर युक्त सम्पूर्ण जगत् का आधार है। अलौकिक है। अलौकिक भाव रखों। प्यार से देखो। ऐश्वर्य युक्त दिव्यरुप धारी है। विदुर घर साग प्यार से खाता है। शवरी के जूठें बेर चाव से खाता है। इसके सभी कार्य अलौकिक हैं विचित्र हैं। वाल्मीकि को कान में होनी अनहोनी बता जाता है। अपने केन्द्र बिन्दु से व्यास को निकालकर परिधि तक पहुँचाता है। ज्ञान का प्रवाह है। सतत् प्रवहमान है। अर्जुन को गोलोकवास का सुख जीवनकाल में अनुभव करा देता है। ऋषियों-मुनियों तक को यह दुर्लभ रहा है। वह तो भाव का भूखा है।

सर्वताप शमनार्थ एकमेव औषध है। भक्त के मन की चेतना है। उसकी गुहार है। बिना मांगे ही आस पूरी करता है तभी तो अत्याचारी पिता से त्रस्त प्रह्लाद को आह्लाद से भर देता है। जब हिरण्यकश्यप उससे पूछता है "कहो अब राम को पुकारो, बुलाओ और फिर उसको आग की लपटो से घिरा देखकर कहता-

है- "बताओ आग की लपटें कैसी लग रही हैं? प्रहलाद को अपने प्रभु पर विश्वास है जिसे भगवान तत्क्षण दिखला देते है। प्रहलाद कहता है-

राम नाम जपतां कुतो भयं
सर्व ताप शमनैक भेषजम्
पश्य तात मम गात्र सन्निधौ
पावको ऽपि सलिलायते ऽधुना

"राम नाम जपने वाले को भय कहाँ? वही तो सभी तापों को शमन करने की एकमात्र औषध है देखों तात! मेरे शरीर को जब आग की लपटें छूती है तो लगता है वह ठण्डी होकर पानी का फव्वारा बन कर हमें शीतलता दे रही है।" यह है भक्त के प्रति भगवान का दया भाव जो भक्त की श्रद्धा और उसके विश्वास में एक रूप होकर भक्त को सरावोर करता रहता है।

भक्तों के हितार्थ ही वही भिखारी बनता है। शेषशायी है किन्तु खम्भे से भी निकला है। द्रौपदी के चीर में समाया है तो भला दुःशासन की क्या औकात जो द्रौपदी को निर्वस्त्र कर पाता? चीर बढ़ता गया। अहङ्कारी दुःशासन का अहङ्कार टूटता गया। उसका सारथीपन ही दुर्योधन को पराजित कर सका। उसका विनीत भाव ही परशुराम को सीख दे सका। उसकी लघिमा का भाव ही सुरसा को सीख दे सका। रावण को उसी विनत भाव ने पराजित कर दिया।

वह विश्वमय है तभी तो विश्वम्भर है। उसका अनन्य भाव ही सर्वमय है विश्व रूप में एक रूप है। अपने लघु भाव को दिखाकर ही ब्रह्मा के अहंभाव को शिव द्वारा चूर कराता है। तेजो राशि है। तभी दीप्तिमान है। दुर्निरीक्ष्य है। अप्रमेय है। आदि मध्य-अन्त से रहित है। सूर्य रूप में प्राण शक्ति विखेरता है। जीवनी शक्ति एवं दाह शक्ति विखेरता है। पराशक्तिमान् है (Paramountcy) मायावश मनुष्य भी बनता है। पराभव मानकर शत्रु को पराभूत करता है। स्वस्ति (सु+अस्ति) अपना अस्तित्व विश्व के कल्याणार्थ रखता है। श्रद्धा विश्वास युक्त होकर आप भी उस परम रूप माधुरी का छककर पान कर सकते है। ध्यान धर सकते है। वरना साधु सन्त भी अपने हृदयस्थ उसे नहीं देख पाते। आप उस पराशक्ति से विलग नहीं हो सकते। शिष्यों का शिष्य है। गुरुओं का गुरु है। राजाओं का राजा है। भिखारियों में सबसे बड़ा भिखारी है। प्रेम का, भाव का भिखारी। जिसे चाहे जना दे। क्या से क्या बना दे। लीनकर तल्लीन कर ले। वह तो तुलसी के माथे पर तिलक करता है। गोपाल बनकर रहस्य रहित बनता है। सीता राघव युक्त है। राधा माधव युक्त है। गिरिजा शंकर युक्त है। सर्व संयुक्त है परन्तु विमुक्त है। सकाम भी है। निष्काम तो है ही। हे राम! हे श्याम! आठोयाम!! तेरे नाम!!!

शिव तत्व से सृष्टि को आवन है
फिरि घूमि के ताही को जावन है
लघिमा से अनन्त को पावन है
ॐ शिव ॐ शिव तब था, अब है
ॐ शिव ॐ शिव रहि जावन है

अहङ्कारहीनता ही शिव तत्व का मूल है। विनत भाव ही तत्व है जो परम कल्याण का सर्जक तत्व है। परम विनीत, परम सूक्ष्म, परम से परम लघुभाव ही शिव तत्व का प्रकाशित पुञ्ज है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश - एक ही प्रभा-विन्दु मे समाये है। अपनी अपनी शक्तियों से ही शक्तिमान होते हैं। स्वामी शिवानन्द जी ने इसे परिभाषित किया है - वे सरल भाव से समझाते हैं। - चतुर्मख ब्रह्मा, एक मुख विष्णु तथा पंचमुख शंकर जी एवं हंस, गरुड़ और वृष पर आरुठ रहकर भी समन्वित हैं। अक्षमाला-वनमाला-मुण्डमाला भिन्न रूप में धारण करते हुये भी एक ही हैं और सम्पूर्ण विश्व उनके रहस्य युक्त स्वरूप के चिन्तन में रत है। श्वेताम्वरयुत चतुर्मख, पीतवस्त्र-समलङ्कत लक्ष्मीपति एवं मात्र वाघम्वरधारी शंकर जी अपने-अपने समूहों से समन्वित होकर सुशोभित होते है। ब्रह्मा जी पर कमण्डल छजता है तो विष्णु जी पर चक्र फवता है, वहीं शिव जी त्रिशूल धारणकर पुनः त्रिशक्ति के समन्वय को अङ्गीकृत करते है। सर्जन-पालन-संहरण, उसी परम शक्ति के तीन स्रोत है जो विभाजित क्षेत्र के छत्रप हैं। जिनका निर्देश एक ही पराशक्ति करती है। ये तीनो प्रणवाक्षर में समाहित हैं। यह परम से भी परम गूठ रहस्य है और रोमाञ्च भी कि हम जिस भाव से, जिस क्षण, जिस हेतु, जिस शक्ति को अभीष्ट मानकर आवाहन करते है, वही चरम भाव शक्ति इस प्रणवाक्षर से प्रभावित होकर हम तक आकर अपनी उपस्थिति का भान कराती है तो क्यों न हम निष्काम भाव से उन्ही का आवाहन करें?

वे तो विना कोई कामना किये कल्याण रसधार ही प्रवाहित करेंगी क्या प्राण तत्व से रहित मिट्टी के शरीर को भी हम संजोये रखते हैं? कदापि नहीं। क्या कोई डाक्टर भले ही सुयोग्यतम क्यों न हों, जीवन की निश्चित गारण्टी दे सकते हैं? नही, न। क्या हम चाहकर निश्चय रूप से जन्म देने, पालन पोषण की गारन्टी दे सकते है? कतई नहीं। तो फिर क्यों न हम कामना हीन होकर ही अपने इष्ट का आराधन पूजन करें। हम क्यों किसी बात के लिये परेशान हों, बेचैन हो? क्यों व्यर्थ की चिन्ताओं का बोझ ढोते फिरें?

क्या हमें दिखावे के लिये गीता-रामायण आदि का पाठ करना उचित है? क्या हम सभी जीवधारी, चराचर ईश्वर का ही अंश नहीं हैं? सभी तो वही हैं। फिर किससे घृणा करें और क्यों?

प्रेम सभी को करें, यह तो समझ की बात है, पर बैर और घृणा करके हम ईश्वरी शक्ति को चुनौती नहीं दे रहे होते हैं? क्या किसी का अहङ्कार वचा है? किसी का मद-मोह-क्रोध कोई धनात्मक करिश्मा कर पाया है? ऐसा तो कभी नहीं हुआ और न आगे ही होगा।

त्याग की भावना ही प्राप्ति का प्रारम्भिक विन्दु है। वही चरम ऐश्वर्य तक ले जाता है। गीता में कृष्ण भगवान् क्या शिक्षा देते हैं? निषिद्ध (मनाही योग्य निन्द्य कर्म) कार्यों को न करें। स्वार्थ हेतु प्रिय वस्तुओं में लिप्त भाव न रखें, किसी भी तरह की तृष्णा से निरत रहें। दूसरों से क्यों सेवा करायें? क्या हम स्वयं आलस्य त्यागकर अपना तथा औरों का कुछ काम करें तो आत्मतुष्टि कम मिलेगी?

पूजन-अर्चन-भजन-कीर्तन में भी अलसायें न रहें तो क्या ही अच्छा हो। बड़ों की सेवा-आज्ञाभाव-विनीत भाव क्या हमें आर्ष ग्रन्थ नहीं सिखाते? सेवा को

ही मेवा क्यों न समझें? क्या ऐसा करके शिवावतार हनुमान जी जगद्वद्यं नहीं हो गये?

भय, इच्छा, वासना, कामना, लोभ का त्याग हमें दैवीगुणों से सम्पन्न करता है। यहाँ तक कि ईश्वर भक्ति के सन्दर्भ में ध्यान रखें कि मोक्ष की भी आकांक्षा न की जाये। क्यों कि दुर्लभ मनुष्य शरीर कब मिले या न मिले? मिले भी तो कैसी हालत में मिले? कहा जाता है कि अच्छी बात की शुरुआत में कभी देर नहीं होती। अतः हमें अभी से शुद्ध एवं पुनीत चिन्तन-मनन एवं निःस्वार्थ क्रियाशीलता में लग जाना चहिये।

आदि शंकराचार्य जी के शब्दों में :-

न मोक्षस्याकांङ्क्षा भव विभव वाञ्छापि च न में

न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः

अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै

मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः।।

"हे मुख में चन्द्रमा धारण करने वाली माँ! मुझे मोक्ष की कदापि कामना नही है, न ही सांसारिक वैभव ही की कोई आकाञ्क्षा है, हे माँ!! तुमसे मै यही भीख माँगता हूँ कि मेरा जन्म "मृडानी रुद्राणी-शिव-शिव भवानी" इन्ही नामों का जप करते हुये बीते और यही कहते कहते यह प्राण छूट जायें, ओ माँ!!!

हनुमान् – शिव अवतार

महावीर हनुमान् जी शिव जी के ही अवतार है। एक बार लीला हेतु कामारि शिव जी मोहिनी रूप पर मुग्ध हो कर उससे लिपटने हेतु दौड़े। यह विचित्र लीला उन्होनें राम जी की सहायता हेतु करने की माया रची थी। एक बार जब देवता रावण से पराजित हो गये और राम भी उसे न मार सके तब देवताओं ने ब्रह्मा जी से तथा बाद में शंकर जी का बहुत पूजन वन्दन किया। अवढर दानी शिव ने प्रसन्न होकर राम की सहायता करने का वादा किया और कहा तुम निमित्त मात्र होगें। शक्ति स्वयं तुम्हारी भुजाओं पर विराजेगी पर मेरे दिये गये अस्त्र से ही रावण का संहार होगा।

मोहिनी रूप से लिपटने के अनन्तर ही वीर्य गिरता देख शिव जी की इच्छा व संकेत से नग नाम के ऋषि ने इस निमित्त सुरक्षित रख लिया कि इससे शिव जी के अनन्य सेवक राम जी का कार्य सिद्ध होगा तथा परोक्ष रूप से पराजित देवता विजय श्री प्राप्त करेंगे। उसी कालान्तर में अञ्जनी गर्भ सम्भूत कपिवर हनुमान् जी की उत्पत्ति हुई। उनके कपि रूप में अवतरित होने का हेतु यह था कि राम जी द्वारा शिव जी का कठोर व्रत पूजन एवं अभिषेक सहित स्तवन किया गया था। प्रारम्भ में तो शिव जी ने राम की कठोर परीक्षा लिया और फिर स्वयं अपने समस्त गणों सहित अवतार लिया। शिव जी की आज्ञा पाकर देवताओं ने भी रीछ एवं बन्दरों का रूप लेकर उनकी इच्छा का पालन किया।

जिस समय राम को अच्छी प्रकार लगा कि रावण हमसे नहीं मरेगा तो अगस्त्य मुनि के उपदेश से सन्तुष्ट होकर शिव जी की आराधना निष्काम भाव से किया। शिव जी अर्न्तयामी हैं। उन्हें जानने में देर न लगी और फिर उन्होनें अपना धनुष बाण राम को दिया।

अगस्त्य मुनि ने जब राम को सीता के वियोग में अत्यन्त अधीर देखा, पहले तो बहुत समझाया कि तुम्हें स्त्री-मोह में पड़ना शोभा नहीं देता लेकिन राम को बहुत विकल देखकर वे बोले कि शुक्ल पक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी को भस्म लगाकर शिव जी का जप-ध्यान एवं आराधन करों। शिव सहस्र नाम का पाठ करो तब शिव जी तुम्हें पाशुपत अस्त्र देंगे जिसके प्रहार से रावण को मार कर सीता को प्राप्त करोगे। राम ने उनके कहे अनुसार पूजन-अभिषेक-स्तुति-वन्दन से शिव जी को प्रसन्न कर दिया। शिव जी ने पाशुपत अस्त्र तो दे दिया किन्तु कहा कि इसका विशेष गम्भीर आपत्ति या प्राण भय होने पर ही प्रयोग करना अन्यथा प्रलय असमय ही हो जायेगी। विष्णुजी ने नारायण अस्त्र, इन्द्र ने अग्निबाण राम चंद्र जी को दे दिया। परन्तु राम फिर भी अधीर दिखे तब देवाधिदेव शिव जी ने सान्त्वना दी- "राम! तुम निश्चिन्त रहो। हम छाया की भांति सदैव किसी न किसी रूप में तुम्हारे साथ ही रहा करेंगे और सहायता करेंगे। किष्किन्धा नगरी में सभी देवताओं ने बन्दरों के रूप में जन्म ले लिया है उनकी सहायता से समुद्र पर सेतु बनाकर लंका नगरी जा पहुंचोगे तथा युद्ध में रावण का वध कर सीता को प्राप्त कर सकोगे।"

"रूद्र अंश द्वारा हनुमान नामक अवतार हो चुका है। वे तुम्हें सभी कार्यों में सहयोग प्रदान करेंगे। जिससे तुम्हें कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ेगा।"

सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्होने ब्रह्मा जी से पुनः प्रार्थना की कि हनुमान् जी का पूरा वृत्तान्त सुनानें की कृपा करें। देवताओं ने नारद जी से पुनः यही प्रार्थना कर ब्रह्मा जी से पूरा हाल सुनवाने हेतु तैयार किया। ब्रह्मा जी को प्रसन्न जान नारद जी ने यही अनुरोध ब्रह्मा जी से किया।

ब्रह्मा जी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले-हे पुत्र! सप्तद्वीपों में एक जम्बू द्वीप है उसके नौ खण्डों में किम्पुरूष नाम के खण्ड में केशरी नामक वानरों के राजा राज्य करते हैं। वे शिव के परम भक्त हैं। उनकी पत्नी अञ्जनी अतीव सुन्दरी एवं पतिव्रता थी। एक बार वे श्रृङ्गार कर पर्वत की एक चोटी पर खड़ी होकर पर्वतों का दृश्य देख आनन्दित हो रही थी, तभी इन्द्र का भाई प्रभञ्जन नाम का पवन यह दृश्य देख कर अवाक् रह गया। उनचास पवनों में वह बहुत बलवान तथा वेगवान था। काम पीड़ित होकर सूक्ष्म रूप धर वह अञ्जनी के शरीर में प्रवेश कर गया। अञ्जनी तपस्विनी एवं पतिव्रता थी ही, उन्हें आभास हुआ तो वे बोली- हे देव! तुम कौन हो जो हमारे शरीर को छू रहे हो। सशरीर सम्मुख आओ अन्यथा....। बात अधूरी रहते हुये भी प्रभञ्जन डर गया और सामने हाथ जोड़ बोला- हे अञ्जनी! मैं इन्द्र का भाई प्रभञ्जन नाम का पवन हूँ। मेरे स्पर्श से किसी को दोष नहीं लगता। तुम्हारे गर्भ से शिव जी के अंश द्वारा एक अत्यन्त बलवान् पुत्र जन्म लेगा जो उन्ही जैसा तेजस्वी, तपस्वी वेगवान् तथा शत्रु नाशक होगा। वह सीता तथा राम का सेवक बनकर तुम्हारे यश का विस्तार करेगा।- यह कहकर प्रभञ्जन अन्तर्धान हो गया।

दसवें माह, कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को पवन प्रभञ्जन के आशीर्वाद से अञ्जनी के गर्भ से शिव सम्पूर्ण अंश से अवतीर्ण हुये। अञ्जनी को शिव नहीं दिखाई दिये तब अञ्जनी ने देखा कि उस बालक का स्वरूप वानर जैसा है तो वह अत्यन्त दुखी हुई और शिखर के नीचे फेंक दिया। शिव की माया अपरम्पार है। बालक के गिरने मात्र से पर्वत धँसने लगे। उस बालक के नेत्र आकाश की ओर पड़ते ही वह सूर्य को फल जानकर निगलने हेतु बढ़े। उसी समय राहु भी सूर्य को निगलने हेतु आगे बढ़ रहा था परन्तु बालक को देखते ही भयभीत होकर भाग गया। राहु सिहिंका नाम की राक्षसी का पुत्र था और महान् पराक्रमी था। उस समय इन्द्र ने वज्र से बालक पर प्रहार किया, जिससे बालक पृथ्वी पर गिर गया। शिव जी ने वज्र की महिमा न घटे इसीलिये यह लीला रची थी। प्रभञ्जन पुत्र को मरा जान प्रलाप करने लगा, शिव जी ने आकाशवाणी द्वारा सान्त्वना दिया कि तुम सब ओर से अपना जीवनदायी अंश खींच लो जिससे वायु-प्रवाह रुक जायेगा। ऐसा ही हुआ।

त्रैलोक में हाहाकार मच गया। ब्रह्मादिक देवगण विष्णु जी को साथ लेकर शिव जी की प्रार्थना करने लगे क्यों कि वे जानते थे बिना विष्णु जी के और किसी की बात शिव जी नही मानेंगें। शिव जी ने कुछ देर के बाद कहा- "वह बालक मेरे अंश से प्रादुर्भूत हुआ है और प्रभञ्जन नामक पवन का पुत्र है। इन्द्र ने अहङ्कार और मूर्खतावश उस पर वज्र प्रहार कर दिया जो बहुत अनुचित एवं

अभर्यादित कार्य किया। अव सभी लोग वायु देव की प्रसन्नता हेतु कुछ करो।

सभी देवताओं ने इन्द्र की ओर से क्षमा माँगी और शिव जी को साथ लेकर वालक के समीप गये। शिव की कृपा दृष्टि पड़ते ही वह वालक चैतन्य होकर उठ वैठा जिससे प्रभञ्जन भी प्रसन्न होकर देवताओं के सहित शिव जी की जै जैकार कर उठा। सर्वप्रथम विष्णु जी ने प्रभञ्जन पवन से कहा- "तुम्हारा पुत्र असीमित शक्तिशाली होकर इन्द्रादि देवताओं का कार्य करेगा।" ब्रह्मा जी ने आशीप दिया- "ऐसा कोई नहीं होगा जिससे यह भयभीत हो सके।" साथ ही इसका अङ्ग वज्र से भी कठोर होगा और भविष्य में वज्र प्रहार होने पर वज्र चूर-चूर हो जायेगा। इसका हनु टेढ़ा हो गया है क्यों कि जन्म के तुरन्त वाद ही विश्व विनाशक वज्र का प्रहार हो गया। इसका इसी कारण हनुमान नाम विख्यात होगा। इसका सुयश सभी युगों मे फैलेगा और इसकी याद करने मात्र से यह सृष्टि की कोई वस्तु ला सकेगा। किसी का भी संहार कर डालेगा किन्तु यह प्रार्थना से तुरन्त प्रसन्न हो जाया करेगा।

ऋषि-मुनि वोले- "यह रामदूत वनकर ऊर्ध्वरेता होते हुये सवके दुःख दूर करेगा।"

शिव जी ने कहा- " हे देवताओं! ऋषियों!! रामचन्द्र जी का कार्य करने के लिये हमने वानर रूप धरा है और प्रभञ्जन से कहा कि हस सदैव तुम्हारे पुत्र की रक्षा करेंगे" और शिव जी अन्तर्धान हो गये।

फिर प्रभञ्जन वालक को अञ्जनी के पास ले गये और सारा हाल सुनाया। अञ्जनी अभिभूत एवं द्रवित हुई। रोमाञ्च से भर गई। वालक को पुचकार कर दूध पिलाने लगी। ऊर्ध्वरेता होने के कारण वह जव चाहते आकाश में उड़ जाते। आकाश गंगा मे डुवकी लगाते और कभी कभी पूँछ को पृथ्वी तक वढ़ा देते थे। यह कौतुक उनके नित्य का खेल हो गया। ऋषि मुनि यह सव विस्मय से देखा करते थे और लाख ध्यान करते कि रहस्य क्या है - किन्तु कुछ भी जान नहीं पाते थे।

एक दिन हनुमान् जी ऋषियों के आश्रम गये। दिव्य वालक की तेजोमय आभा से रोमाञ्चित हो ध्यान करने लगे कि भला वालक किसका हो सकता है? अभी से यह हाल है आगे चलकर यह प्रलय कर देगा। यह सोंचकर उन्होनें वालक को शाप दिया कि तू अपने वल को भूल जायेगा और जव कोई याद दिलायेगा तभी अपनी सामर्थ्य जान सकेगा क्यों कि तुम्हें अपनी शक्ति पर अहङ्कार है जिससे तू उचित अनुचित कुछ नहीं देखता और उत्पात किया करता है उससे हमारी तपस्या में व्यवधान पैदा कर देता है।

तभी आकाशवाणी हुई कि हे मुनियों! तुमने हनुमान् जी को ऐसा शाप देकर ठीक नहीं किया ये साक्षात् शिव हैं और रामचन्द्र जी के कार्य हेतु इस रूप में आये हैं। अतः अपने शाप का शीघ्र खण्डन करो मुनियों ने हनुमान जी से क्षमा याचना की "हे शिवावतार हनुमान् जी! हे पवनपुत्र!! हे अञ्जनी नन्दन!!! हे साक्षात् शिव!!!! जब तक आपकी भेंट रामचन्द्र जी से न होगी तभी तक आप अपने वल को भूले रहागे। अब आप सूर्य के पास जाकर उनसे विद्या ग्रहण करें जिससे तुम्हारे द्वारा पहले के कृत्य से उनका क्षोभ भी जाता रहे और सभी का

कल्याण हो।

विद्या प्राप्त कर सूर्य से गुरुदक्षिणा माँगने का अनुरोध करने लगे। उल्टे सूर्य उन्हीं की स्तुति करने लगे "हे हनुमान्! मैं आपके मुख्य स्वरुप को जानता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि आप पम्पापुर जाकर मेरे पुत्र सुग्रीव का पक्ष लें। वहीं आपकी भेंट रामचन्द्र जी से हो जायेगी। मुझे यही गुरुदक्षिणा चाहिये।"

हनुमान् जी माता-पिता के पास आये और गुरुदक्षिणा का वृत्तान्त कहा। माता-पिता प्रसन्न होकर बोले- "गुरु की आज्ञा-पालन करने के लिये तुरन्त तैयार हो जाओ और तुम्हारा अवतार जिस काम के लिये हुआ है तुम वही काम जाकर पूरा करो। हमारा आशीर्वाद तुम्हें और बल प्रदान करेगा।"

ऋष्यमूक पर्वत पर राम जी उन्हें पहचान गये और उनकी स्तुति करने लगे- "हे हनुमान्! तुम शिव जी के सम्पूर्ण अंश से उत्पन्न हुये हो और हमारे परम हितैषी हो।"

यह सुनते ही सुग्रीव आदि ने उन्हें प्रणाम किया। जब हनुमान् जीने यह देखा कि अब तो सुग्रीव तथा स्वयं रामचन्द्र जी भी मुझे आज्ञा देने में संकोच करेंगे तब उन्होनें यह माया की कि सब लोग यह प्रकरण ही भूल गये केवल उनका बल ही याद रहा।

राम ने पुनः पुल बँधने पर वही "रामेश्वरम्" में एक शिवलिंग स्थापित किया और पूजन अभिषेक किया और इसके बाद ही लङ्का में प्रवेश किया।

रामचन्द्र जी ने आदि शक्ति की भी आराधना अर्चना किया। माँ ने प्रसन्न होकर कहा-"राम! मेरी पुत्री सीता सताई गई है मुझको स्वयं रावण के शिर चाहिये मैं मुण्डमाला पहन कर नाचूँगी और तुम सब लंका में कहर मचा दो। मैं तुम्हारी भुजाओं में समा जाऊँगी और तुम शिव जी के पाशुपत अस्त्र से प्रहार करना। मै स्वयं रावण के प्राण खींचकर उसे निर्जीव कर दूंगी। इससे अहङ्कारी तथा अत्याचारी रावण क्या - कोई भी कभी एक पतिव्रता अबला पर अत्याचार नहीं कर पायेगा और तुम्हारा यशोगान सभी देवगण ऋषिमुनि करेंगे और तुम्हारा मर्यादा पुरुषोत्तम होने का भी उद्देश्य सिद्ध होगा।

अम्बापराम्बा आदि शक्ति की जै

शिवावतार हनुमान की जै

सियावर रामचन्द्र की जै

भजन

सानुज सीता को उरधारी - शिव अवतारी जै हनुमान।
जै जै अजर अमर कामारी - कपि तनुधारी जै हनुमान। ।। १।।
प्रभु के तुमहो आज्ञाकारी - लंका जारी जै हनुमान।
अपनी इच्छा से तनुधारी - दैत्य संहारी जै हनुमान। ।। २।।
अहि रावण की भुजा उखारी - राम पुजारी जै हनुमान।
जै जै जै ओ भव भयहारी - आस तिहारी जै हनुमान। ।। ३।।
लायेउ नाथ सुमेरू उखारी - मूर्च्छाहारी जै हनुमान।
"हौं उरिन न" वचन उचारी - अवध विहारी जै हनुमान। ।। ४।।
तुमरो तेज न सकइ सम्हारी - दुनिया सारी जै हनुमान।
साधू सन्तन की रखवारी - आरतिहारी जै हनुमान। ।। ५।।
निसि दिन रामइ राम उचारी - जसु विस्तारी जै हनुमान।
चारिउ भैयन की मनुहारी - तुमइ पियारी जै हनुमान। ।। ६।।
सबके बिगरे काज सँवारी - लेहु उबारी जै हनुमान।
केहिके आगे हाथ पसारी - तुमइ बिसारी जै हनुमान। ।। ७।।
तुमरी महिमा अमित अपारी - जग विस्तारी जै हनुमान।
गठरी पापन की है भारी - लेहु उतारी जै हनुमान। ।। ८।।
चन्दन अगर कपूर न थारी लेउ निहारी जै हनुमान।
कइसन बातन बाती बारी - निपट भिखारी जै हनुमान। ।। ९।।
आरतिहारी कीरति धारी - शिव अनुहारी जै हनुमान।
जग ते न्यारी महिमा भारी - है उजियारी जै हनुमान।। ।। १०।।
हर्षित दशरथ अजिर बिहारी - तुम्हहि निहारी जै हनुमान।
प्रभु के कारण कपि तनुधारी - शिव अवतारी जै हनुमान। ।। ११।।

केहिके आगे हाथ पसारी - तुम्हइ बिसारी जै हनुमान्।
सबकै बिगरे काज संवारी - लेहु उबारी जै हनुमान्।।

बोलो हनुमन्त लाल की जै

हनुमान का सुग्रीव से राम की मित्रता कराना

सुन्दर काण्ड के विषय में जानकारी हेतु इसके पूर्व के किष्किन्धा काण्ड अर्थात किष्किन्धा नगरी और उसके आस पास के लगे क्षेत्रों में घटी घटनाओं के विषय में जानकारी पा लेना उचित रहेगा। यद्यपि राम कथा का सागर अथाह है विना राम जी की कृपा के कुछ जाना जा सके, यह कपोल कल्पना ही है। स्वयं वेद जिनकी महिमा का वखान करते हैं, तुलसीदास जी ने स्वयं चतुर्मुख ब्रह्मा जी के श्री मुखों से कहलवाया है - "इति वेद वदन्ति न दन्त कथा" ऐसे राम जी के चरित सागर में अवगाहन का लोभ संवरण भी कठिन ही है। वे तो माया से ही मनुष्य रूप में अवतरित हुयें हैं। कलिमल हारी राम, प्रेम पुजारी राम, प्रेम भिखारी राम, जो अविनाशी होकर भी जन्म लेते हैं, मानव-प्रकृतिगत क्रिया कलाप करते है, शरीर भी त्यागते हैं, उनका नाम ही सर्वश्रेष्ठ भवरोगशामक औषधि है। समस्त संशयो को दूर करना राम तत्वका मूल है। वह तो रमा में ही रमा हैं। हम सभी को अपनें में रमाये हुये है। वह अविराम है। उसका विराम नहीं है तभी तो राम है। सन्तत अभिराम है। कागमुशुंडि का "इष्ट देव मम वालक रामा" पाँच वर्ष की वय का राम है। वाल रूप में उन्हें ही तो शिव जी अविराम भजते हैं। धन्य है रमता जोगी शिव जी-रमता राम-सतत् निष्काम-हंस सभी के कल्याण हेतु राम को प्राण सम हृदयस्थ कर अप्रत्यक्ष सीख देते रहते हैं। काग-मुशुण्डि जी गरुड़ जी को इसी शिव भाव को स्पष्ट करके कहते हैं- 'सेवक सेव्य भाव विनु भव न तरिअ उर गारि'। यही सेवा भाव हनुमान रूप लेकर अवतरित हुआ है और अपने शिव तत्व को पल पल पर प्रवाहित एवं प्रभासित करता है।

किष्किन्धा नगरी के निकट ही रिष्य मूक पर्वत पर सुग्रीव अपने मन्त्रियों के साथ रहा करते थे। सूर्य पुत्र सुग्रीव के कहने पर ब्रह्मचारी वेष में वजरङ्गी वीर हनुमान राम के सम्मुख जाकर प्रणाम कर उनके विषय में जानकारी हेतु अनुरोध किया। राम ने सब कुछ निःसंकोच प्रकट किया। यहाँ तक कि सीता हरण की बात भी नहीं छिपाई। यह राम की ही लीला थी। स्वयं केशरीनन्दन पूर्व में ऋषि शाप से उद्धार का क्षण जानकर अपने प्रभु-अपने सर्वस्व-राम जी के चरणों में गिर पड़े। स्वयं अपने श्री मुख से परम विभूत शिव जी ने उन अद्भुत एवं भार्मिक क्षणों की सुधि-अनुभूति पार्वती जी को कराई---

चौ०- प्रभु पहिचान परेउ गहि चरना। सो सुखु उमा जाइ नहि वरना।।
पुलकित तन मुख भाव न वचना। देखत रूचिर वेष कै रचना।।

स्वामी को पहचानते ही चरणों में गिरे और नहीं छोड़ रहे हैं। उस सुख को शब्दों में कैसे कहा जाय? शरीर पुलक से भर गया। मुख से वचन निकले भी तो कैसे? उनके मनोहारी वेश का बनाव कितना लुभावना और सादगी भरा है जिससे साक्षात् प्रेम टपक रहा है और शिव जी का मनोभाव उस प्रेम रस से आप्लावित हुआ जा रहा है।

आगे कपिवर कहते हैं-

मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं।।
तव माया वश फिरउं भुलाना। ताते तैं नहि प्रभु पहिचाना।।

और तुरन्त ही उलाहना भी मीठे भावों में वोर कर दे दिया।

"पुनि प्रभु मोहि विसारेउ, दीन वन्धु भगवान"

आप तो दीन वन्धु है। दीन दयालु है। आपने मुझे तो अपनी माया के जाल में फंसा दिया और अपने दयालु होने के यशोभाव को भी अलगकर दिया। आप तो हमें सहज ही पहचान सकते थे लेकिन नाथ! आपने भी भुला दिया। यह कहते कहते हनुमन्त लाल वहुत भाव विभोर हो गये। राम की स्तुति-वन्दना किया। राम की लीला अपार है। लीलाधर ही उसे जान सकते हैं या फिर वे जिसको उस लीला की थाह देने की कृपा करें, वह जान सकता है।

दो महान् शक्तिमान् एक दूसरे को अश्रुपूर्ण नयनों से निहार कर अपने मनोभावों की वर्षा कर रहे हैं-

चौ०- अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रकटि प्रीति उर छाई।।

तब रघुवर उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सीचिं जुड़ावा।।

हनुमान् जी धन्य है जिन्हें स्वयं उठाकर राम जी हृदय से लगा लेते है और अपने नेत्रों का जल गिराकर उन्हें शीतलता पहुँचाते है। मनस्ताप वहकर निकल जाता है।

चौ०- सुनुकपि जियँ मानसि जनिऊना। तै मम प्रिय लक्षिमन ते दूना।।

"हे कपि! सुनों। यह मत सोचों कि मै तुम्हें भुला भी सकता हूँ? तुम तो लक्ष्मण जी से दूने प्यारे हो। मन में हीनता भाव क्यों लाते हो? सव कोई हमें समदर्शी कहता है लेकिन सेवक मुझे अनन्यगति होने से अतिशय प्यारा होता है क्यों कि वह तो मुझे ही सर्वस्व मानता है। दूसरा भाव, दूसरी इच्छा से उसे सरोकार ही कहाँ रहता है? अनन्य तो वही है जिसमें सेवा ही मेवा लगे। जिसमें सेवकपने की भावना जागृत रहे और सम्पूर्ण जगत् ही भगवान् का स्वरूप प्रतीत हो।

अपने स्वामी का अनुकूल रुख जानते ही हनुमान जी गुरुदक्षिणा की बात याद कर सग्रीव की पूरी बात कह सुनाई और कँधों पर दोनों भाइयों को विठाकर सुग्रीव के पास ले गये। सुग्रीव भी अपने भाग्य को सराहने लगे। अग्नि को साक्षी कर हनुमान् जी ने राम-सुग्रीव की मित्रता कराई।

लक्ष्मण जी ने भी पीछे की सीता हरण की बाते सुग्रीव को बताई। सुग्रीव वोले-नाथ! जान की मिलेंगी। आप विश्वास कीजिये। मुझे स्मरण आता है कि एक वार आकाश पथ में परवश, विलाप करती सीता को यहीं से देखा था। और जानकी जी ने कुछ सोंच समझकर अपना दुपट्टा नीचे गिरा दिया था। और वह हा राम! हा राम!! कहकर विलाप कर रही थी-

"राम राम हा राम पुकारी। हमहिं देखि दीनेउ पट डारी।।

मांगा राम तुंरततेहि दीन्हा। पट उर लाइ सोंच अति कीन्हा"।।

फिर राम के पूछने पर पर बालि तथा मायावी दानव का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। और कहा कि बालि शाप के भय से इस चोटी पर नहीं आता। सुग्रीव ने तारा व राज्य छीन लेने का पूरा हाल प्रभु को निःसंकोच बता दिया।

राम ने सुग्रीव को ढाँढस बँधाया। और कहा कि अब वालि के अत्याचार का प्याला भर चुका है। अन्त निकट है। अंहकारी-अत्याचारी को प्रताड़ित करना तो मेरी आन है। और अत्याचारी का ब्रह्मा जी और परम वत्सल शिव जी भी साथ नही देते।

'ब्रह्म रूद्र सरनागत, गयें न उबरिहि प्रान'

यहाँ शिव जी का पूर्व में राम को सहायता देने का वचन भी दोनों को याद था। शिव रूप में हनुमान् जी को तथा सीता की खोज में लगे राम को भी। दूसरे, शिव जी यह चरित्र कर रहे थे कि यदि राम वालि का वधकर डालेंगे तो एक तो हनुमान का गुरुदक्षिणा रूप में सूर्य नारायण को सुग्रीव की सहायता का वचन पूर्ण होगा। दूसरे वालि जो कि रावण से भी वलशाली था केवल अहङ्कार करके ही अपना बल चरित्र खो वैठा था, जब राम उसे मारेंगे तो यह अत्यन्त आसान काम राम के लिये रह जायेगा कि वे रावण का वधकर दें। क्योकि अहङ्कार रावण के तेज तथा बल को खोखला कर चुका था। अगर छात्र को कठिन एवं जटिल प्रश्नों को हल करना सिखा दिया जाय तो परीक्षा में आये प्रश्न वह खेल खेल में ही हल कर देगा।

इस प्रकार इस घटना क्रम से कई उद्देश्य एक साथ पूरे होते जायेंगे एक तो मित्रता का सम्यक् निर्वाह जिसका भावी पीढ़ी अनुकरण कर सके। दूसरे हनुमान् का सेवा कार्य एवं मित्रता कराने की वैधता का सिद्ध होना। तीसरे वालि को सद्गति प्रदान करना। चौथे हनुमान् जी को ऋषि शाप से उद्धार कराना।

<u>मित्रता का निर्वाह क्यों? और कैसे?:-</u>

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं विलोकत पातक भारी" यह राम जी के मुख से कहलवाकर तुलसीदास जी ने सुग्रीव को भी मित्रता का निर्वाह करने की सुरति करा दी-

"मित्रक दुख रज मेरू समाना" रजकण तुल्य मित्र के दुःख को भी पर्वत तुल्य जानकर अधिकतम सहायता दे।

देत लेत मन संकं न धरई। वल अनुमान सदाहित करई।
विपत्तिकाल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह सन्त मित्र गुन एहा।।

❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁

"जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई।।
"सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र, सूल समचारी।।"

सच्चे मित्र की परख यही है कि विना संकोच मित्र से भाग ले और कुछ उसे देना पड़े तो देने में भी संकोच न करे। और औकात के अनुसार उसकी सदैव सहायता भी करे।

और जो मित्र आस्तीन में साँप की भाँति दगेबाजी करे-धोखा करे उसे त्यागने में भलाई है। क्यों कि सेवक नीच कर्म वाला हो-अविश्वासी हो-अपना ही मतलव सिद्ध करे, राजा कंजूस हो उनसे भलाई की क्या आशा की सकती है।

इसी प्रकार पत्नी-पति में विश्वास न जगा सके, मित्र के मन में खोंट हो ऐसे चार प्रकार के प्राणी शूल के समान छिदा करते हैं।

तारा को सद्गति देना :-

तारा विदुषी नारी थी। उसे रामावतार की भी जानकारी थी साथ ही उनके परिवार के विषय में भी उसे पहले से सबकुछ ज्ञात था तभी उसने वालि को समझाया था-

"सुनुपति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बन्धु तेज बल सीवा।।
कोसलेस सुत लक्षिमन रामा। कालहु जीति सकहिं सग्रामा"।।

लाख समझाने तथा मनुहार करने पर पर भी जब वालि अपने अभिमान में चूर होने के कारण नहीं माना, तो वही हुआ जो होना था। वालि को एक ही वाण से धराशायी कर दिया तो बालि भी परम् ज्ञानी होने के कारण (यह ज्ञान उसके अहङ्कार ने दबा रखा था) हृदय में पुलक भर, लेकिन दिखावे की वाणी कठोर कर बोला-

"हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा।।
धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि व्याध की नाईं।।
मैं वैरी सुग्रीव पियारा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।।

राम ने तुरन्त उत्तर दिया -

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ये चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि विलोकइ जोई। ताहि वये कछु पापन होई।।

अरे वालि! तू अहङ्कार की गुफा में बन्द था। इतनी सुयोग्य पत्नी की बातें जो सीखभरी थी, तूने नहीं मानी। छोटे भाई की पत्नी, बहन, पुत्रवधू, कन्या- ये चारों समान हैं। इनके साथ कन्यावत आचरण करे। अपनी कन्या ही समझे। जिस पर भी कोई यदि इनको कुदृष्टि से देखे तो उसके मारने में तो भलाई ही है। क्या ऐसे आचरण को तू अवगुण नहीं मानता?

वालि के ज्ञान-कपाट खुल गये। वह बोला-

"प्रभु अजहूँ मैं पापी, अन्तकाल गति तोरि"

हे भगवान्! अन्तिम समय में सगुण रूप में आपको पाकर भी क्या मुझमें पाप बच रहा? जिस रूप माधुरी के लिये ऋषि मुनि तरसते है, उसका मैं पान कर रहा हूँ। क्या मेरे पाप क्षीण नही हो गये?

उसकी कोमल, अभिमान रहित वाणी सुनकर राम द्रवित हो गये। उनके सिर पर कर कमल का स्पर्श कराकर बोले कि हे बालि! तुझे यदि जीवन की अभिलाषा हो तो उसे भी पूरी कर दूँ। तुम्हें अभयदान दे दूँ। लेकिन बालि अब दूसरे ही भावों में रम चुका था अतः बोला-

"जासु पाइ बल संकर कासी। देत सबहिं समगति अविनासी।।
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।।"

वार-वार जन्म पाकर मुनि जन आपका यत्न पूर्वक ध्यान करके भी अन्त समय आपका नाम नहीं निकलता। मुझको तो आप अक्षय आशीर्वाद प्रदान कर रहे हैं। वेद भी आपका वखान करते हैं। "प्रभो! आपको सामने प्रत्यक्ष पाकर वुद्धि में इतनी तो निर्मलता आ ही गई है कि मैं इस तुच्छ शरीर का मोह न करुँ। आप यही आशीर्वाद दें कि जन्म जमान्तर आपके चरणों में प्रीति वनी रहे। मेरी ही समानता के वल तथा विनय सम्पन्न मेरे पुत्र अङ्गद को हे नाथ! अपनी शरण दीजिये। अपना सेवक वनाइये। यही आपसे अन्तिम विनय है।"

और शान्ति पूर्वक वालि ने शरीर त्याग दिया।

तारा अत्यन्त आकुल होकर विलाप करने लगी। राम जी ने तारा को ज्ञानोपदेश देते हुये कहा -

"छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा।।

प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्हरोवा।।"

यह अधम शरीर तो मिट्टी-पानी-अग्नि-शून्य-वायु-इन तत्वों से वना मिट्टी ही समझो। वह तो तुम्हारे सामने ही जीव विना सोया जैसा लग रहा है। जीव तो नित्य है। वह तो न मरा है न कभी मरेगा। फिर किसके मोह वश रूदन कर रही हो। विलाप करने से तो मोह जाल ही फैलेगा। अशान्ति ही वढ़ेगी।

उसको ज्ञान मिल चुका था। ज्ञान चक्षु खुलते ही वह राम के चरणों से लिपट कर प्रेमाश्रुभर कर वोली नाथ! आप तो अनाथों के भी नाथ हैं। मै अनाथ हो चुकी हूँ। अव अपनी श्री चरणों की भक्ति देकर मुझे माया-भव-जाल से मुक्त करें नाथ!

शिव जी पार्वती को समझाते हुये कहते हैं-

उमा दारू जोषित की नाईं। सवहि नचावत रामु गोसाईं।।

उमा राम सम हित जग माही। गुरु पितु मातु वन्धु कोउ नाही।।

सुर नर मुनि सवकै यह रीती। स्वारथ लागि करै सव प्रीती।।

"हे भगवती! राम जी सारे संसार को कठपुतली की तरह नचाते हैं। उनके समान हित और भला कौन करेगा। उनके समान न कोई गुरु, न पिता, न माता, न भाई- कोई भी नहीं है। क्यों कि सभी स्वार्थवश प्रीति दिखाते हैं। यह, सुर-नर -मुनि सभी की विडम्वना युक्त गति एवं प्रकृति है जिसमें वँधा प्राणी नाचता रहता है।"

इसके अनन्तर, सुग्रीव को अभय दान दिया। राजनीति सिखाई। और फिर चतुर्मास (चौमासा) राम जी ने प्रवर्षण गिरि पर विताया। देवताओं ने पहले ही गुफा को सजा-संवार दिया था कि दया सिन्धु राम यहाँ कुछ दिन ठहरेंगे।

लक्ष्मण जी को भी वहीं पर अनेक शिक्षा प्रद नीतियाँ सिखाई। फिर चौमासा वीतने पर राम जी लक्ष्मण को पास वुलाकर समझाने लगे कि सुग्रीव को भी अहङ्कार आ गया लगता है। राज्य पाकर उसे विवेक नहीं रहा लगता। तुम जाकर थोड़ा भय दिखलाना फिर साथ ही वुला लाना।

इधर हनुमान जी को भी लगा कि सुग्रीव को प्रभु के कार्य की सुधि नही रह

गई लगती है अतः सुग्रीव के पास जाकर उनको प्रभु के कार्य की याद कराई और सुझाया कि जहाँ तहाँ वानरों को छोटे छोटे समूहों में इधर उधर भेज दीजिये जिससे सिया जी की खोज खवर ज्ञात हो सके।

तव तक सुग्रीव को लक्ष्मण के क्रोध करने की जानकारी लगी उसने हनुमान जी को ही लक्ष्मण के पास तारा को साथ लेकर भेजा और विनय भाव को दर्शवाया। हनुमान् जी की बुद्धि पूर्ण अनुमय विनय तथा युक्ति सुनकर लक्ष्मण जी परम सन्तुष्ट हुये। सुग्रीव ने लक्ष्मण जी के चरण कमल धोये। आराधना-वन्दना किया। अपने आसन पर आशीप कराकर अनेक भाँति सेवा किया। हनुमान् जी ने वानर-समूहों के इधर उधर भेजने की वात सुन लक्ष्मण जी प्रसन्न हुये। फिर सुग्रीव, हनुमान आदि लक्ष्मण जी के साथ रामचन्द्र जी के पास आये। सुग्रीव आराधना करते हुये वोला-

"अतिसय प्रवल देव तव माया। छूट हि राम करहु जो दाया।।

लोभ पास जेहिं गर न वंधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।।"

"यह गुन साधन ते नहि होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई।।"

"हे देव! आपकी माया वड़ी प्रवल है। विना आपकी दया यह कैसे छूट सकती है। लोभ का फन्दा जिसके गले न पड़ा हो, हे नाथ! वह तो आपके तुल्य ही हो सकता है। आपकी कृपा के विना तो यह होना नहीं है। कितनी भी साधना की जाय, यह लोभ एवं कामना-वासना जव आपकी कृपा होगी, तभी जायेगी।"

"तव रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई"

<u>राम कृपा की महिमा :-</u>

उसकी अभिमान रहित अनुनय विनय सुनकर राम ने अनेक प्रकार सान्त्वना दी और उसकी अभिमानहीनता तथा विनयशीलता की तुलना भरत भैया से किया जिससे सुग्रीव का अन्तर्क्षोभ जाता रहा।

शिव जी राम की महिमा का बखान भवानी जी से करते हुये कहते है-

"वानर कटक उमा मै देखा। सो मूरूख जो करन चह लेखा।।

अस कपि एक न सेना मांही। राम कुसल पूछी जेहि नांही।।

यह कुछ नहि प्रभु कै अधिकाई। विस्वरूप व्यापक रघुराई।।"

इतनी विशाल सेना में भी कोई एक कपि भी ऐसा न बचा, राम ने जिससे कुशल क्षेम न पूँछी हो। यह राम की कोई महिमा या बड़ाई की बात नहीं है क्यो कि समग्र विश्व में उनका ही रूप है। सभी में व्याप्त है अतः यह तो प्रभु जी के लिये अत्यन्त साधारण वात ही है"

फिर सुग्रीव ने वानरों को समूहों में बुलाया। उनको एक माह की अवधि देकर सीता जी की खोज हेतु जहाँ तहाँ भेज दिया। बाद में एक समूह जिसमें अगंद, हनुमान्, जामवन्त आदि वीर योद्धा थे, उन्हें दक्षिण दिशा में जाने का निर्देश दिया। सव वीर वानर चल दिये और प्रभु को माथा नवाया। सबसे वाद में हनुमान् जी ने प्रणाम किया राम ने पवन पुत्र को निकट वुलाया और व्यक्तिगत

सन्देश दिया क्यों कि उनके वल और वुद्धि पर उन्हें वड़ा भरोसा था। सवने हनुमान् जी को आगे कर लिया मानो राम जी के द्वारा अञ्जनी लाल को सीता को भेजने हेतु सन्देशा देने पर-यह निश्चय हो गया हो कि हनुमन्त लाल ही निश्चित रूप से सीता का पता लगा लेंगे।

"पीछे पवन तनय सिरूनावा। जानि काज प्रभु निकट वोलावा।।

वहु प्रकार सीतहि समुझायेहु। कहि वल विरह वेगि तुम्ह आयेउ।।

यद्यपि प्रभु जानत सव वाता। राजनीति राखत सुर गाता।।

सर्वप्रथम पहाड़ के नीचे आये। एक गुफा पड़ी। उसमें आगे एक तालाव दिखाई दिया जिसमें कमल पुष्पित थे। पास ही एक मन्दिर में एक तपस्विनी ध्यान मग्न दिखार्द दी। उसके निकट गये। उसनें जल पीने और फल खाने को आग्रह किया और वोली कि अव तो मैं अपने प्रभु के पास जा रही हूँ। वह अवसर तुम्हें यहाँ देखकर आया जान पड़ा है। आँखे वन्द करो। सीता का पता पा लोगे। आँखें खोलते ही सचमुच समुद्र के किनारे अपने को पाकर वे सव वड़े आनन्दित हुये।

आगे चले। सम्पाती से भेंट हुई। वानरों ने जटायू का हाल कहा। उसे पहले दुःख हुआ किन्तु राम काज में प्राण त्यागने पर उसके भाग्य को सराहा।वोला- "सीता जी लंका की अशोक वाटिका में अशोक के नीचे वैठी मुझे साफ दिख रही हैं। लेकिन तुम इतनी दूर नहीं देख पाओगे। सौयोजन (१२०० कि०मी०) समुद्र जो लाँघ सके वही सीता का पता लगा सकेगा। यह सुन सभी दुखी हुये क्यों कि यह दूरी उन सवकी पहुँच के वाहर की थी।

जामवन्त ने सभी की ओर देखा। निराशा लगी। अपने वुढ़ापे को कोसते हुये कहा-अव मैं शायद इतनी दूरी न लाँघ सकूं। अपनी युवावस्था में सारी पृथ्वी की सातपरिक्रमा मैने मात्र २ घड़ी (४८ मिनट) में कर ली थी।

अंगद ने भी संशय दिखाया तो जामवन्त ने कहा तुम्हारा सन्देह व्यर्थ है। तुम तो आसानी से लाँघकर पार जाकर आ सकते हो लेकिन तुम्ही सेना के नायक हो। तुम्हें कैसे भेज दूँ।

अव हनुमान की ओर देखा और बोले-

"कहइ रीछपति सुन हनुमाना। का चुप साधि रहेउ वलवाना।।

पवन तनय वल पवन समाना। वुधि विवेक विग्यान निधाना।।"

और फिर भाव विभोर हो प्रेमाश्रुभर कर कहा-

"कवन सो काज कठिन जग माही। जो नहि होत तात तुम्ह पाहीं"

और फिर हनुमान जी को उनके अवतार की याद दिलाई और बोले-

राम काज लगि तव अवतारा। सुनतइ भयउ पर्वताकारा

स्वरूप की महिमा देखें :-

"कनक वरन तन तेज विराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा।।

सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहि नाघउँ जल निधि खारा।।"

ऐसा लग रहा था कि सोने की चमक लिये पहाड़ खड़ा हो। बार बार शेर की जैसी दहाड़ कर हनुमान् जी कहने लगे इसे खेल खेल भी लाँघ कर आ जाँऊ और यह कहते हुये अत्यन्त विभोर होकर बोले-

"सहित सहाय रावनहि भारी। आनहुं इहाँ त्रिकूट उपारी।।

जामवन्त मैं पूछउँ तोही। उचित सिखावनि दीजहु मोही।।"

समुद्र लाँघ जाँऊ। कहो तो पूरी सेना सहित रावण को मार डालूं और त्रिकूट पर्वत को भी उखाड़कर इधर ही रख दूँ। जामवन्त महाराज! मैं आपसे पूछता हूँ। मुझे उचित सलाह दो कि मुझे क्या क्या करना है।

"हे तात! तुम बस इतना भर करो कि सीता को देखकर उनका हालचाल मालुम करके आओ"

फिर केवल दिखावे मात्र ही राम जी सेना लेकर राक्षसों को मारकर सीता जी को ले आयेंगे।

क्यों कि उनका यश, दयालुता का भाव है ही ऐसा पुण्य दायक कि उसके कहने सुनने मात्रा से पाप दोष-विकार नष्ट हो जाते है जिसके श्रवण मात्रा से भवरोग दूर होते हैं। उनका निर्मल यश निर्विकार, निःस्वार्थ है उसके बखान से, चर्चा से पाप पुञ्ज नष्ट होते है।

धन्य हैं बाल्मीकि अवतार तुलसी, जिन्होनें राम जी के चरण कमलों के रज रूपी पराग को सतत् निर्विकार भाव से धारण किया है।

अथ सुन्दर काण्ड

श्री गणेशाय नमः

श्री जानकी बल्लभो विजयते

राम चरित मानस

पञ्चम सोपान

सुन्दर काण्ड

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाण शान्ति प्रदं

ब्रह्माशम्भु फणीन्द्र सेव्यमनिशं वेदान्त वेद्यं विभुम्।

रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं

वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपाल चूड़ामणिम् ।।१।।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये

सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे

कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च ।।२।।

अतुलितबधामं हेमशैलाभदेहं

दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनाभग्रगण्यम्।

सकल गुण निधानं वानराणामधीशं

रघुपति प्रियभक्तं वात जातं नमामि।।३।।

भाव :-

सन्त तुलसी विष्णुरूप श्री राम जी की आराधना से प्रारम्भ करते हैं। वे वन्दना इस भाँति करते हैं "जो शान्त हैं, सनातन हैं, शाश्वत हैं, अनुपम अप्रमेय हैं, उनके अस्तित्व को सिद्ध करने या प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं, जो स्वयं सिद्ध हैं, जो निष्पाप, निष्कलंक, निर्दोष है, निवार्ण-मोक्ष प्रद शान्ति के प्रदाता हैं क्यो कि स्वयं शान्त हैं, जिनकी सेवा स्वयं चतुर्मुख ब्रह्मा करते है, शम्भु सदैव जिन्हें हृदयरथ किये रखते हैं ताकि सेवा का किंचित् क्षण भी सेवा-विमुख न हो सके, शेष जी जिनको सेवा हेतु निकट ही बनाये रखते हैं किम्वा स्वयं ही प्रत्येक स्थिति में पास ही रखते हैं, चाहे अपने शरीर की शय्या पर आसीन कराये, चाहे पास बैठकर पहरेदारी करें, चाहे चरण चापते हुये अपने प्रभु की सेवा रूपी मेवा का स्वाद निरन्तर चख सकें, वेद के प्रारम्भ'मध्य-अन्त (शीर्ष) तीनो स्थितियों में जो जानने योग्य है, वेद स्वयं उनके रूप की, मायां की, चरित्र की सुख शान्ति देने वाली गाथा का गान करते रहते हैं, जो कन कन में समाया हुआ है, सभी देवगण जिनके अस्तित्व को स्वीकार कर उनकी महत्ता का प्रतिपादन

करते हैं, उन्हें प्रधानतम मानकर सुखानुभव प्राप्त करते है, मायावश, लीला हेतु मनुष्य जन्म लेते है, मनुष्यवत् व्यवहार एवं चेष्टायें करते हैं, दुःख-सुख, यश-अपयश, हानि-लाभ, कीर्ति, अपकीर्ति, सत्व-असत्व आदि तत्वों से नितान्त अलग रहकर भी सांसारिक क्रिया कलाप करते हैं, अपने सभी दायित्वों, रिश्तों, सरोकारों का सम्यक् निर्वाह करते हैं, कृपा सिन्धु है, जिनकी कृपा वाप्पित होकर समग्र सृष्टि पर वरावर भाव से रिमझिम वर्षा से सरावोर करती रहती हैं, अहैतुकी, अकारण ही दया दिखाते हैं। विना कारण ही दीनों दुखियों की रक्षा के लिये प्रतिज्ञा वद्ध रहते हैं, रघुवंश जिनके कारण सुयश प्राप्त कर अक्षुण्ण यश प्राप्त किये हुये है, जो विनीत भाव रूपी ऐश्वर्य की पराकाष्ठा से युक्त हैं, जो महिपालों को अपने विनत भाव युक्त होने के कारण ही, अपने को परम् लघु दिखाने की लालसा के निमित्त ही सर्वदा पीछे छोड़ देते हैं, यह उन महिमान की महिमा ही है। ऐसे महिमान श्रीमान् राम नाम वाले सर्वेश्वर अखिलेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ।।१।।

हे निखिलेश्वर! हे अन्तर्यामिन्!! हे रघुनायक!!! मैं सत्य कहता हूँ-प्रमाण कैसे दूँ? -आप अन्तस्थल में स्वयं वासं कर जान चुके होंगे-मैं भी तो आपका ही लघु अंश हूँ-आपकी सद्कृपा से मेरी कामनायें समाप्त हैं-मुक्ति की भी कामना क्यों करूँ? क्या आपकी अनपायनी भक्ति से वढ़कर कोई उपलब्धि हो सकती है? तो आप पूर्ण भक्ति ही दीजियें और मेरे मन को निष्काम कीजियें। प्रभो! सांसारिक तृष्णाओं से मुझे दूर रखिये नाथ !!२!!

अञ्जनीनन्दन का चरण वन्दन करते हुये गोस्वामी जी कहते हैं-अतुलनीय वल जिसमें समाया है, वल का जो अक्षम स्रोत है, जो सोने के शैल जैसे आभावान् है, ऐसा पर्वत जिसमें वल समाहित है, सोने जैसी चमक, वीरता की चमक का आभास जो देता है, जिनसे सारे गुण संग्रहीत हैं, एक जुट हैं सारे गुण अपनी किरणों कर जगत् में प्रसारित होते हैं, अपने अनुकर स्थान जान रुकते भी हैं, वानर रूप में भी जो अधिपति है, अधिनायक है, उन्नायक है, जगद्पति-रघुपति-सीतापति जो अपनी अहैतुकी भक्ति आपको सौंपकर गौरव का अनुभव करते है, हे वायुनन्दन! हे प्रभञ्जन पुत्र!! हे वायुपुत्र!!! आपकी श्वास ही प्राण वायु वनकर सृष्टि में प्राण फूँकती है, सुखद स्पर्श देकर तापमुक्त कर शीतल चन्दन की भाँति अनुभूति देती हुई जीवन्त जिजीविषा (जीते रहने का मनोवल) से संयुक्त करती है, ऐसे रूद्रावतार साक्षात् शिव, अंजनी लाल, परम् वलधाम हनुमान् जी की आराधना-वन्दना-अर्चना करता हूँ कि हे कामारे! आप अपने अवठर दानी होने की सुरति करते हुये मेरी मनोकामना पूर्ण करें-वह कामना भी-विनाकिसी कामना की भक्ति मात्र ही देकर कृतार्थ करें हे केशरी नन्दन!!!

दैत्य निकन्दन अञ्जनी नन्दन! आप दैत्यों के वन को जलाने वाले दावानल सम है। ज्ञान का अक्षय भण्डार हैं, कपीश्वर! आपसे वड़ा और प्रिय रामभक्त भला और कौन हो सकता है? हे वातजात! हे पवनपुत्र!! तुम्हारा ही पुत्र आर्त्तभाव से पुकार कर कुछ प्रेरणा की भीख मांगता है कि जिसके सम्वल से निर्वल के वल रघुकुल तिलक रामं जी की यशोगाथा कह सुन सकूँ। वरना मै युगों पुरानी गाथा का किस प्रकार आदान-प्रदान, लेन-देन कर पाऊँगा। वे दीनानाथ भी तो आपका सहारा लेते हुये आपको महिमा और वड़ाई देते हैं। हे रामदूत! आपकी जै हो! जे

हो!! जै हो!!! ।।३।।

चौ०:- जामवन्त के वचन सुहाये। सुनि हनुमन्त हृदय अतिभाये।
तव लगि तुम्ह मोहि परिखेहु भाई। सहि दुख कन्द मूल फल खाई।।
जव लागि आवहुं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष विसेखी।।
यह कहिनाइ सवन्ह कहुँमाथा। चलेउ हरषि हियँधरि रघुनाथा।।
सिन्धुतीर एक भूधर सुन्दर। कौतुक कूदि चढेउ ताऊपर।।
वार वार रघुवीर सम्हारी। तरकेउ पवन तनय वल भारी।।
जेहि गिरिचरन देइ हनुमन्ता। चलेउ सोगा पाताल तुरन्ता।।
जिमि अमोघ रघुपति करवाना। तेही भाँति चलेउ हनुमाना।।
जल निधि रघुपति दूत विचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी।।

दो०- हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रणाम।
राम काजु कीन्हे विनु मोहि कहाँ विश्राम।।१।।

भाव :-

जव जामवन्त जीने यह कहा कि हे पुत्र! तुम वस इतना जाकर करो कि सीता को देखकर उनका हालचाल आकर कहो। फिर तो राम जी स्वयं उचित कदम सोंच समझकर उठायेंगे। हम सभी को तो उनके कहे अनुसार ही चलना है। यह तो तुम भली प्रकार जानते हो।

जामवन्त की वातें हनुमान् जी के वहुत ही सुख-शान्ति देने वाली लगी जिससे उनका हृदय पुलक से भर गया। वे सभी से वोले भाइयों! तुम लोग तव तक मेरी राह देखना-जव तक मै सीता जी की सुधि लेकर वापस न आजाऊँ भले ही इसके लिये तकलीफ उठानी पड़े और कन्द-मूल-फल के अलावा कुछ भी खाने को न मिले। भीतर से उभरे आत्मवल के कारण मुझे हर्षयुक्त रोमाञ्च हो रहा है-लगता है-काम हो जरूर जायेगा।

ऐसा कहते ही सभी को प्रणाम कर हँसी खुशी राम जी को हृदयङ्गम कर चल पड़े। समुद्र के किनारे एक सुन्दर पर्वत था उस पर खेल खेल में कूदकर चढ़ गये और बार बार राम जी को याद करते जिससे उनकी शक्ति और स्फूर्ति और बढ़ती जाती। महावलवान् तो वे थे ही, जिस पर्वत पर भी उनके पैर पड़ते, वह पर्वत जमीन से नींचे तक धंस जाता। फिर जैसे राम का अचूक वाण तीव्र वेग से चलता है-उसी वेग से अपने लक्ष्य की ओर पवन तनय भी उड़ चले।

अपने ऊपर से आकाशमार्ग से जाते पवन पुत्र, केशरी नन्दन को जाते समुद्र ने देखा और पहचान गया। समुद्र में ही मैनाक पर्वत जो पंखों से युक्त था और वह विचित्रता इसलिये वच पाई थी कि जव इन्द्र ने एक वार कुपित होकर सभी पर्वतों के पंख काट काट गिराना शुरू कर दिया तो घवराकर मैनाक पर्वत ने इन्द्र के भाई प्रभञ्जन पवन से हाथ जोड़ सहायता मांगी। केशरी महराज वहुत ही अधिक वल एवं वेगधारी थे ही-उन्होंने उसे उड़ाकर समुद्र में छिपा दिया। उसी की याद समुद्र दिलाते हुये मैनाक से वोला- ओ मैनाक! जिन्होंने यहाँ तुम्हें

छिपाकर तुम्हारे पंखों को बचाया था उन्हीं का पुत्र आज राम जी के काज हेतु लंका जा रहा है। तुम अपने पंखों से हवा झलकर उनकी थकान दूर करो। हनुमान जी ने यह सब सुना जाना और धन्यवाद-आशीर्वाद स्वरूप उस पर्वत शिखर को हाथ से छूकर उसे निहाल किया और अपने विनीत स्वभाव वश ही उसे प्रणाम भी किया और यह कहते फिर उड़ चले कि हे भाई राम जी के काम को पूरा किये बिना मुझे विश्राम नहीं सुहाता और आगे बड़ी तीव्रता से बढ़े।

(चौ० १ से ५ तक तथा दोहा सं० १ तक)

चौ०-जात पवन सुत देवन्ह देखा। जानै कहुँ बल बुद्धि बिसेखा।।
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता।।
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवन हमारा।।
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं।।
तव तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।।
कवनेहु जतन देइ नहि जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना।।
जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।।
सोरह जोजन मुख तेहिं भयऊ। तुरत पवन सुत बत्तिस भयऊ।।
जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।।
सत जोजन तेहि आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवन सुत लीन्हा।।
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागी बिदा ताहि सिरु नावा।।
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुद्धि बल मरमु तोर मै पावा।।

दो०-राम काजु सबु करिहहु ; तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो ; हरषि चलेउ हनुमान।।२।।

भाव :-

हनुमान् जी धैर्य पूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़े जा रहे थें। देवता यह सब दूर से देख रहे थे फिर भी उनके मन में दुविधा उठी कि चुपके से यह जान ले कि पवन तनय लक्ष्य पूर्ति हेतु शौर्य, धैर्य तथा पैनी बुद्धि रखते हैं कि बाधाओं से विचलित हो जाते है। क्यों कि पहले के पराजित देवगण इस बार बड़े योजना बद्ध तरीके से अपनी चालें चल रहें थे। इस निमित्त नागमाता सुरसा को हनुमान जी के बल और बुद्धिलब्धि (I.Q.) की की परख करने हेतु तैनात कर रखा था। देखते ही पवनपुत्र को सुनाकर बोली- "आज देवताओं ने मेरे खाने का जुगाड़ कर दिया है।" हनुनाम जी बिना विलम्ब किये बोले- हे माता! मैं प्रभु राम के ही काज के निमित्त जा रहा हूँ। वह कार्य बस इतना मात्र है कि मैं सीता जी के बारे में जानकारी लेकर राम जी को बतला आऊँ। फिर मैं खुद ही आपके मुँह में आ जाऊँगा और तुम भी इच्छानुकूल आहार कर लेना। हनुमान जी को स्वयं पर पूर्ण विश्वास था ही और उनका मनोबल भी उद्देश्य के प्रति सजग था। लेकिन वह किसी न किसी भाँति बाधा डालती रही। तब हनुमान् जी ने अधिक तर्क का समय

न जाय उससे कहा- "खाओ न! क्यों रूकी हो?" सुनते ही उसने योजन भर मुँह फैला कर हनुमान जी को डराना चाहा। वे डरने वाले कब थे। उन्होंने तुरन्त ही दूना रूप दिखा कर उसकी चुनौती स्वीकार की। जब उसने सोलह भोजन का मुख बनाया, हनुमान जी ने अपनी आकृति बत्तीस योजन की कर लिया। वह विस्मित हुई लेकिन हर बार जितना मुँह फैलाती, कपिवर दूने हो जाते। तब उसने सौयोजन का विस्तार किया। वह उन्हें अपनी मायावी कार्यों से विचलित एवं भ्रमित करना चाहती थी। हनुमान जी ने अत्यन्त त्वरित निर्णय लेते हुये मन में विचार किया कि यह तो व्यर्थ ही उलझाये रखना चाहती है अतः हनुमान् ने उलटी चाल चलते हुये अत्यन्त लघु रूप धारण कर निर्भय होकर उसके मुख मार्ग से होते हुये बाहर आ गये और उसे हर्ष तथा चकित भरी देख प्रणाम किया और कहा- "माता मैं तो आपके उदर से वापिस भी आ गया। उगली हुयी वस्तु को कोई खाता नहीं सो माई! अब तो आज्ञा करो तो आगे बढ़ूँ। वह प्रसन्न होकर अपने वास्तविक रूप में आ गई और कपिवर की विनम्रता, बुद्धि की प्रखरता, ठीक अवसर पर ठीक निर्णय लेने की क्षमता से आश्वस्त हुई और बोली- "मैं तो तुम्हारी बुद्धि और शक्ति तथा युक्ति की परीक्षा लेने हेतु गुप्तचर वेष में आई थी। मुझे पूरी तरह दृढ़ विश्वास हो गया है कि तुम बल और बुद्धि में अप्रमेय हो। मैं आशीष देती हुई जा रहीं हूँ कि तुम निश्चित ही राम जी द्वारा सौंपे कार्य को ठीक तरह से अञ्जाम दोगे। यह सुन वीर बजरंगी प्रसन्न मन लक्ष्य की ओर चल पड़े। धन्य हैं बल व बुद्धि के निधान हनुमान्! क्यों न हों? राम दूत जो ठहरे।। (दोहा सं० २ तक)

चौ०-निसिचरि एक सिन्धु महँ रहई। करि माया नभु के खग गहई।।
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं। जल विलोक तिनकै परिछाहीं।।
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। एहि विधि सदा गगन चर खांई।।
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहि चीन्हा।।
ताहि मारि मारुत सुत वीरा। वारिधिपार गयउ मतिधीरा।।
तहाँ जाइ देखी वन सोभा। गुंजत चंचरीक मधुलोभा।।
नाना तरू फल फूल सुहाये। खग मृग वृन्द देखि मन भाये।।
सैल विसाल देखि एक आगे। तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे।।
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई।।
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहिन जाइ अति दुर्ग विसेखी।।
अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोटकर परम प्रकासा।।

छन्द :- कनक कोट विचित्र मनिकृत सुन्दरायतनाघना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारुपुर बहुविधि बना।।
गजबाजि खच्चर निकर पदचर रथ वरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसि चर जूथ अतिबल सेन बरनत नहि बनै।।

वन बाग उपवन वाटिका सर कूप बापी सोहहीं।
वन बाग सुर गन्धर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।।
कहुँ माल देह विसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुविधि एक एकन्ह तर्जही।।
करि जतन भट कोटिन्ह विकट तन नगर चहुँदिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनुखर अज खल निसाचर भच्छहीं।।
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कृपा कछु एक है कही।
रघुवीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही।
दो०-पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह विचार।
अतिलघु रूप धरौ निसि, नगर करौ पइसार।।३।।

भाव :-

कहा जाता है कि जब कोई कार्य विशेष शुरू किया जाता है तब पहलें तो दैवी शक्तियाँ धैर्य और दृढ़निश्चय की परीक्षा अवश्य लेती है। फिर आसुरी शक्तियाँ बाधा-विलम्ब कराने हेतु आड़े आती है। यह प्रायः होता है। यहाँ भी ऐसा ही घटित हुआ।

समुद्र में राहु के परिवार की एक राक्षसी समुद्र में रहती थी। राहु बाधक एवं विलम्बकारी प्रसिद्ध है ही फिर उसके ही गोत्र की बूढ़ी राक्षसी अपनी हरकत से कैसे बाज आती? उसका रोजाना यह ठर्रा बन चुका था कि वह छल कपट करके आकाश मार्ग में उड़ रहे जो जीव-पक्षी आदि होते-उनकी परछाँई समुद्र के स्थिर जल में पहले देखती, उनकी छाया को ढक लेती थी जिससे वे उड़ न ही पाते थे। इस बीच वह नभचर जीवों को खा जाती थी। हनुमान जी को उसने वैसा जानकर ठीक वही तरीका अपनाया, लेकिन वे कोई ऐरे-गैरे तो थे नही कि उसकी चाल न समझ पाते। उनके जन्मते ही इसी तरह की घटना घटी थी कि राहु सूर्य को निगलने हेतु बढ़ रहा था लेकिन बजरंगी के देखने मात्र से इतना भयभीत हुआ कि भागते ही बना था- भला वह बूढ़ी राक्षसी उनकी बुद्धि के पैनेपन से क्यों न मारी जाती-उसका जो हश्र होना था हुआ। उसे मारकर बजरंगीवीर धैर्य एवं सुमतिधारी कपिवर समुद्र के पार पहुँच गये।

इस घटना से यह भी प्रमाणित होता है कि उस समय विज्ञान काफी प्रगति पर था। क्यों कि उक्त घटना परिदर्शी (Periscope) लगी पनडुब्बी से आधुनिक समय में जिस प्रकार पानी के भीतर से बाह्य दृश्य देख लिया जाता है, वह सब उस समय भी कम नहीं था। और हनुमान जी के बारे में तो तुलसीदास ने वन्दना में ही कहा है- "वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ" बाल्मीकि ऋषि जो त्रिकालदर्शी थे उन्ही की समता का परम ज्ञानी हनुमान जी को बताया है- सो उचित ही है। कपीश्वर एक नहीं अनेक बार इस तथ्य की कसौटी पर खरे उतरे

हैं- चाहें सुग्रीव द्वारा भेजने पर राम लक्ष्मण को ले जाकर मिलाना, चाहें प्रस्तुत अवसर की बात हो- चाहें लंका से सुषेण वैद्य को लाकर संजीवनी लाना हो, चाहे युद्ध कौशल हो, चाहे दौत्यकर्म (Ambassador) का निर्वाह हो-बिना क्रोध या घृणा के बिना उत्तेजना के उन्होंने हर समय "विशुद्धविज्ञानी" होने को प्रमाणित किया है।

वहाँ पहुँचकर वन की शोभा का हूबहू दृश्य सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है। पुष्प पराग के लोभ में भौंरे गुञ्जायमान है, नाना प्रकार के पेड़ पौंधे फूलों एवं फलों से लदे हैं जो बड़े लुभावने एवं मनोहारी है, पक्षी चहक रहे हैं, अनेक मृग तथा उनके छौने आनन्द पूर्वक कुलाँचें भर रहे है। अत्यन्त प्रसन्नचित्त निर्भय हो कर एक पर्वत की चोटी जो बहुत बड़ी थी-झपटकर उस पर चढ़ गये।

शिव जी यह हाल भवानी जी को बताते हुये कहते हैं कि हे उमा! इसमें कपि की वीरता रही हो - यह बात नहीं है। यह तो उस प्रभु का प्रताप है जो काल का भी काल है - उसी का दूत भय करे तो क्यों?"

यह बताकर वे अपने व अपने प्रतिरूप हनुमान जी की लघिमा अर्थात् विनतभाव को सर्वोपरि सिद्ध करते हैं जिससे भूलकर भी अहं भाव न पनपने पाये क्योंकि वे इसी कारण अवतरित हुये है और कि जब तक रावण अंहकार नहीं करेगा तब तक उसकी पराजय असम्भव है और नारद जी की बातों में आकर जब रावण ने खेल खेल में गर्वोन्मत्त होकर कैलाश को उठा लिया था- तभी शिव ने संकेत दिया था कि अब दशशीश में अहंकार का बीज अच्छी तरह पनप चुका है अतः उसका भक्ति भाव तिरोहित होकर उसकी जगह अंहभाव ने ही ले लिया है अब राम द्वारा वह अवश्य ही मारा जायेगा और देवों का कार्य सिद्ध होगा। यह सब पहले से ही तै हो चुका था देवताओं की इस बार योजना दूरगामी और दूरन्देशी भरी थी।

भला ऐसी स्थिति में शिवावतार पवन पुत्र में विनीत भाव कैसे कम रहता? यह विधान तो शिव जी का ही बनाया हुआ था। इसीलिये हर जगह वे नम्रता के, विनत होने के तत्व से परिपूर्ण ही लगते हैं और थे ही।

पर्वत की चोटी से जो दृश्य पवन सुत देखते हैं- लंका नगरी में जो इस तरह किलेबन्दी की गई थी-इतना ऊँचा परकोटा-चारों ओर अथाह सागर से घिरा हुआ और सोने के कँगूरे इतने स्वाभाविक रूप से अपनी चमक से चकाचौंध कर रहे हैं कि हनुमान जी कुछ क्षण यह अद्भुत दृश्य देखते ही रहे। क्यों कि सोने का परकोटा मात्र सोने का होने से ही नही चमक बिखेर रहा था।

यह रंग बिरंगी मणियों से युक्त है। रहने का स्थान अति रम्य है। चौराहे है। बाजार है। साफ सुथरी सड़कें है। उनसे निकलने वाली छोटी छोटी गलियों से शोभा पा रही लंका पुरी बड़े सुव्यवस्थित तरीके से बसाई गई है। हाथी - घोड़े - खच्चर तथा पैदल और साथ ही अनगिनत रथ खड़े हुये हैं। नानारूपधारी दैत्यों

की सोना की तमाम टुकड़ियां हैं।

वन-वाग वगीचे-सरोवर-कुयें-वावली पानी से परिपूर्ण शोभा पा रहे हैं। वहाँ मनुष्यों की कन्यायें, नाग कन्यायें, देवता तथा गन्धर्वों की कन्यायें जो अति सुन्दरी हैं-दैत्यों का दृश्य तो सचमुच भयावना है-पर्वत जैसी विशाल देहधारी दैत्य दहाड़ रहे हैं और अनेक अखाड़ों में कुश्तीवाजी की कलायें दिखला रहे हैं और एक दूसरे पर ताल ठोक रहे हैं।

अनेक भयानक एवं मायावी दैत्य लंकापुरी के चारों ओर पहरेदारी कर रहे हैं। वहुत जगहों पर तो दैत्यगण-भैंसे, गायें, गधे, वकरे और कहीं कहीं मनुष्यों को भी पकड़ कर उन्हें खा रहे हैं। वड़ा ही वीभत्स दृश्य है जिसकी तुलसीदास जी ने वहुत ही कम करके जानकारी इसलिये कराई है क्यों कि यह सव करके भी राम जी के हाथों मत्यु को प्राप्त करेंगे और निश्चय ही महापातकी भी राम की अहैतुकी कृपा के कारण मोक्ष प्राप्त करेंगे।

यह पूरा दृश्य देख समझकर हनुमान जी ने यही युक्ति निकाली कि रात्रि के समय लंका में घुसूँ और वहुत ही छोटा रूप वनाकर क्यों कि अन्यथा दैत्यों की नजरों से वचना वहुत ही मुश्किल है।। दोहा सं० ३ ।।

चौ०-मसक समान रूप कपिधरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निन्दरी।।
जानेहि नहीं मरम सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा।।
मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर वमत धरनी ढनमनी।।
पुनि सँभारि उठी सो लंका। जोरि पानि परि विनय संसका।।
जव रावनहि ब्रह्मवर दीन्हा। चलत विरंचि कहा मोहि चीन्हा।।
विकल होसि तैं कपि कें मारे। तव जानेसु निसिचर संघारे।।
तात मोर अति पुन्य वहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता।।

दो०-तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूलन ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतंसग।।४।।

भाव :-

फिर मच्छर जैसा रूप वनाकर राम जी को यादकर लंकापुरी में प्रवेश किया। लेकिन सव कुछ निर्वाध नहीं होना था-सो एक लंकिनी नाम की निशाचरी फिर आड़े आ गई। गुप्तचरी कर रही वह राक्षसी वड़ी चालाक थी-इतना रहस्य करने पर भी हनुमान उसकी नजर में आ ही तो गये। वोली-अरे दुष्ट!' चुपके से भेष वदलकर घुसा जा रहा है। मेरी नजर से वचकर भी तू निकल जाना चाह रहा है। रावण का मुझे आदेश है जो भी चुपके से प्रवेश करते मिल जाय-उसे खा लेना ही तुम्हारा काम है। अव नहीं भाग पावोगे। यह कह कर जव तक झपटे- उसी बीच हनुमान जी ने फिर रूप वड़ा वना लिया और एक मुक्का हनक कर जड़ दिया

और उसके मुहं से खून की उल्टी होने लगी। फिर उठी। सम्हली। हाथ जोड़े। प्रार्थना किया कि जिस समय ब्रह्मा जी ने रावण को वरदान दिया था तब भी रावण के निकट वेष बदल चुपके से अलग खड़ी थी-लेकिन ब्रह्मा जी ने फिर भी पहचानते हुये कहा-तू जब किसी बन्दर की मार से अधमरी हो जाय तब समझ लेना कि रावण के पाप का घड़ा भर गया है और फूटने वाला है। उसका अन्त अब दूर नहीं है। उस समय से ही मेरी मति बदल गई थी लेकिन मजबूरी तथा भयवश विवश थी। मैं इस घड़ी की न जाने कब से बाट जोह रही थीं। अब मति के साथ ही मेरा कोई पुण्य भी उदय हुआ लगता है जो रामदूत को अपने नेत्रों से देख पाई ऐसे सत्संग की तो बड़भागी लोग कामना किया करते हैं क्यो कि स्वर्ग-अपवर्ग (मुक्त होने का आनन्द) एक तरफ रखे और पलभर का सत्संग एक तरफ तो सत्संग का ही तराजू वजन रहेगा और वे सारे स्वर्गीय सुख इस सत्संग के तुल्य नहीं हो सकेंगे।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि रावण के राज्य में तमाम लोग भय तथा मजबूरी में ही उसके पापकर्म में भागीदार थे अन्यथा वह यह कदापि न कहती। ।। दोहा सं० ४ तक।।

चौ०-प्रविसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा।।
गरल सुधा रिपुकरइ मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।।
गरुड़ सुमेरू रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही।।
अतिलघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।
मन्दिर मन्दिर प्रतिकर सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।
गयउ दसानन मन्दिर माही। अति विचित्र कहि जात सो नाही।।
सयन किये देखा कपिते ही। मन्दिर महुँ न दीखि बैदेही।।
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा।।

दो०-रामायुध अंकित गह, सोभा वरनि न जाइ।
नव तुलसिका वन्द तहँ, देखिहरख कपिराइ।।५।।

भाव :-

हे कपिवर! कोशलेश रघुनन्दन रामजी को हृदय में ध्यान कर नगर में प्रवेश कर सब कार्य पूरा कीजिये। क्यों कि जब राम जी की कृपा होती है तो शत्रु स्वयं मित्रता करने लगता है, विष स्वयं अमृत तुल्य हो जाता है। गो-खुर जितनी जगह में सारा समुद्र समा सकता है, अग्नि शीतल हो जाती है।

कागभुशुण्डि जी कहते हैं-हे गरुड़ जी! राम कृपा की महिमा है ही ऐसी। सुमेरू पर्वत धूल के कण जैसा हल्का हो जाता है, यह तो उनकी कृपा दृष्टि का ही प्रभाव है।

अब, यह सब बाते हृदयङ्गम कर पुनः अत्यन्त लघु रूप बना लिया और पुनः

राम का नाम स्मरण किया और लंका नगरी में प्रवेश किया। एक एक घर खोजमारा। कहीं कहीं योद्धागण दिखाई दिये। रावण के अति सुन्दर महल में पहुँचे। जहाँ चारों तरफ ध्यान पूर्वक दृष्टिपात किया लेकिन जानकी जी नहीं दिखाई दीं। यह समझकर कुछ विस्मय भी हुआ। तब और आगे बढ़े जहाँ पर एक सुन्दर भवन और दिखाई दिया जिससे सटा हुआ एक मन्दिर भी बना हुआ था, जिस पर जगह जगह राम चन्द्र जी का धनुष बाण चित्रित था। उस मन्दिर की शोभा देखते बनती थी। पास में पंक्तियों में तुलसी के नये पौधे भी लगे हुये थे जिसे देखकर कपिवर अत्यन्त हर्षित हुये। साथ ही आश्चर्य भी हुआ।।दो०सं० ५।।

चौ०-लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा।।
मन महुँ तरक करै कपि लागा। तेहीं समय विभीषनु जागा।।
राम राम तेहि सुमरिन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा।।
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधुते होइन कारज हानी।।
विप्र रूप धरि बचन सुनाये। सुनत विभीषण उठि तहँ आये।।
करि प्रनाम पूँछी कसुलाई। विप्र कहहु निज कथा बुझाई।।
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई।।
की तुम्ह रामुदीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़ भागी।।

दो०-तब हनुमन्त कही सब, राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन, भगन सुमिरि गुन ग्राम।।६।।

भाव :-

लंका तो निशाचरों की नगरी है, यहाँ मन्दिर कैसे और किसने बनाया होगा क्योकि यह तो किसी भक्त एवं सज्जन का वास मालूम पड़ता है, यह मन में भाव आ-जा रहे थे कि तब तक विभीषण की आँख खुल गई और जागते ही राम राम के शब्द निकाले तब तो हनुमान जी को अतुलनीय प्रसन्नता हुई कि कोई भक्त एवं सज्जन पुरुष ही हो सकता है इससे जरुर पूँछ जाँच कर परिचय करुंगा क्यो कि ऐसे साधु स्वभाव वाले पुरुष से कोई काम बिगड़ने का भय तो है नही। और तुरन्त ब्राह्मण रूप धरकर कुछ कहा। शब्दों की ध्वनि विभीषण के कानों तक पड़ी और वह तुरन्त ही बाहर आये। प्रणाम किया और कुशलक्षेम पूँछी। और उनकें विषय में कुछ जानकारी चाही। पूछा-क्या आप भगवान के भक्तों मे से ही कोई हैं? क्यों कि न जाने क्यों मेरे हृदय में उत्साह तथा प्रेम भाव उमड़ आया है या कोई रामचन्द्र जी के चरणों के सेवक हैं जो भाग्यवश मुझे दर्शन दें रहें है।

हनुमान जी ने अब कुछ नहीं छिपाया अपना नाम भी बताया। जानकर विभीषण और हनुमान जी दोनों के मन विशेष पुलक से भर गये और बार बार रामचन्द्र जी के गुणों का बखान करते रहें।। दो सं० ६ तक।।

आगे विभीषण ने अपनी बात कही-

चौ०-सनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ विचारी।।
तात कवहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
तामस मन कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माही।।
अव मोहि भा भरोस हनुमन्ता। विनु हरि कृपा मिलहिं नहि सन्ता।।
जौ रघुवीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा।।
सुनहु विभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सव ही विधिहीना।।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।।

दो०-अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुवीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे विलोचन नीर।।७।।

भाव :-

पवनसुत! सुनों। हमारा यहाँ रहना वैसे ही है जैसे दाँतों के वीच जिह्वा। चारों तरफ वाधायें ही वाधायें है, किसी सूरत में अपने को कुसंगति के प्रभाव से वचाये रख सकूँ ऐसी ही युक्तियाँ सोंचा करता हूँ लेकिन प्रभु की कृपा के सम्वल से कुछ न कुछ उपाय स्वतः होता जाता है। हे तात! भला कभी रघुकुल नायक श्री रामजी मुझे अनाथ जानकर कृपा करेंगे? तुम तो भाग्यशाली हो कि उनकी सेवा का अवसर पा जाते हो। एक तो मन में तमस भरा है-निशिचर कुल में जन्म ऊपर से कोई साधन-भाव भी नहीं-न ही मन में उनके श्री चरणों में प्रीति ही स्थान कर पाती है। यहाँ का रहना-वसना ही ऐसा है कि न जाने कैसे ज्यों-त्यों समय वीता जा रहा है और कुछ भजन-साधन भी नहीं कर पाता। फिर भी अव मै आश्वस्त हूँ कि भगवान् की कुछ कृपा-दृष्टि अवश्य हुई है। अन्यथा उनकी कृपा के विना सन्त-समागम असम्भव ही है। लेकिन जव उनकी कृपा हुई तो तुमने हठ कर के दर्शन दे दिया। मैं तो कल्पना भी नहीं करता था कि जब वाहर आऊँगा तो तुम सरीखे प्रभु के पायक से भेंट हो पायेगी।

पवन तनय बोले-विभीषण। प्रभु की तो यही खासियत है वे विना कारण ही दीन दयाल कहे जाते हैं। यह नहीं कि जव उनका कोई काम करो तभी वदले की नियत से वे कुछ हित करें। विना किसी हेतु ही उनकी कृपा मिला करती है। फिर, तुम तो उनके निःस्वार्थ सेवक हो। तुमसे तो उनकी विशेष प्रीति निश्चय ही होगी। भला वताओ-मैं कौन ऊँचें कुल का हूँ? एक तो कपि योनि में जन्म मिला। सव तरफ से हीन हूँ। हर दम चंचलता बनी रहती है जो हल्के पन को दर्शाती है। मेरा तो यह हाल है, ऐसा निरीह हूँ कि कोई उठकर सबेरे नाम तक ले ले तो खाना तक न नसीव हो सके। सुनो सखा। ऐसा नीच जानकर भी मुझ पर प्रभु कृपालु हुये-उनकी इस कृपा का कैसे निहोरा करुँ और यह कहते कहते उनकी दोनों आँखें आँसुओं से भर गई। जो यह सव जानते हुये भी उनकी याद नहीं

करते, उनका भजन-कीर्तन नहीं करते-यह उनका दुर्भाग्य ही है। !।। दोहा सं० ७ तक।।

चौ०-जानत हूँ अस स्वामि विसारी। फिरहिं ते काहे न होहि दुखारी।।
एहि विधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य वि श्रामा।।
पुनि सब कथा विभीषन कही। जेहि विधि जनक सुता तहँ रही।।
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता।।
जुगति विभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवन सुत विदा कराई।।
करि सोउ रूप गयउ पुनि तहंवा। बन अशोक सीता रह जहँवा।।
देखि मनहि मन कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जाति निसि जामा।।
कृस तनुसीस जटा एक वेनी। जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी।।

दो०-निज पद नयन दिएँ मन, राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवन सुत, देखि जानकी दीन।। ८ ।।

भाव :-

सब कुछ ईशकृपा के अवलम्ब से ही होता है-यह जानकर भी जो ऐसे कृपालु स्वामी को भुला देते है, वे क्यों न दुखी होकर दर दर भटकतें फिरें - और भी अनेक प्रकार से दोनो लोग अपनी अपनी भक्ति और प्रेम से युक्त बातें करते रहें और मगन मन ऐसे विभोर हो गये जिसे शब्दों में किस भाँति कहा जाय? फिर विभीषण ने सब कहानी बताई जिस तरह सीता जी वहाँ रह रहीं थीं। हनुमान जी ने कहा भाई! मैं माता जानकी जी को देखना चाहता हूँ।

विभीषण ने युक्ति सुझाई जिससे वहाँ आसानी से पहुँच कर सीता के दर्शन कर सकें। उनकी बताई भाँति ही रुप बनाकर हनुमान जी विदा माँगकर वहाँ गये और देखकर पहले मन ही मन प्रणाम किया। वह जिस दिशा में रह रही थीं - बड़ी ही पीड़ा जनक स्थिति थी। बैठे बैठे रात गुजर जाती है। शरीर सूख सा गया है। सिर पर जटाओं का एक जूड़ा है, हृदय में राम के गुणों को स्मरण कर विभोर हो रही हैं। बीच-बीच में हवा की सरसराहट से पल भर को रुक कर फिर उसी भावना में मन रम जाता है। बस नीचे की ओर आँखें झुकायें हुये मन तो प्रभु के चरणों की ही याद में खोया हुआ है। उनकी यह दशा देखकर हनुमान जी को बहुत अधिक दुःख हुआ। लेकिन समय और अवसर को सुरति कर यही सोंचते रहे कि किस भाँति-क्या और कैसे बोलूं ।। दो० सं० ८ तक।।

चौ०-तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ विचार करौं का भाई।।
तेहि अवसर रावन तहँ आवा। संग नारि बहु कियें बनावा।।
बहुविधि खल सीतहि समझावा। सामदाम भय भेद देखावां।।
कह रावन सुनु सुमुखि सयानी। मन्दोदरी आदि सब रानी।।

तव अनुचरी करहुँ पन मोरा। एक वार विलोकु मम ओरा।।
तृनधरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवध पति परम सनेही।।
सुन दस मुख खद्योत प्रकासा। कवहुँ कि नलिनी करइ विकासा।।
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहि रघुवीर वान की।।
सठ सूनेहि हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहि तोही।।
दो०-आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष वचन सुनि काठि असि, वोला अति खिसिआन।।९।।

भाव-

पहले तो पवन तनय अत्यन्त लघु रूप धरे हुये वहाँ के परिदृश्य का अवलोकन करते रहे और अपने अगले कदम के वारे में सोंचने लगे इस वीच वे तरु पल्लवों के झुरमुट में ही छिपकर यह सव देख रहे थे कि रावण वहाँ आ पहुँचा जिसके साथ वनी ठनी तमाम अन्य स्त्रियाँ भी थी। पहले तो राजनीतिक दाँवपेच दिखाने की चेष्टा करता हुआ अनेक उपक्रम कर समझाता रहा। साद-दाम-भय आदि नीतियाँ भी वघारता रहा कि हे सीता! तुम सुन्दर वदन वाली तथा चतुर एव प्रगल्भ हो। तुम मात्र एक वार तो मेरी ओर देखों। मैं मन्दोदरी आदि सभी रानियों को तुम्हारी अनुचरी (नौकरानी-टहल करने वाली) करके तुम्हें पटरानी वनाऊंगा, यह मैने पहले ही प्रतिज्ञा कर रखी है और मैं उस निश्चय को कदापि नहीं वदलूंगा। कुछ विद्वानों का विचार है, रावन अपनी सम्मोहन शक्ति द्वारा सीता की दृष्टि को वाँधकर मोहनिद्रा में करके अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता था। कुछ का कथन है या विचार है कि वह अहङ्कारवश अवश्य था लेकिन यदि उसका उद्देश्य सीता को पटरानी वनाना होता तो वह उसे हरण करने के वाद अलग अशोक वाटिका में कदापि न रखता। दूसरे, वह जव सीता को खींचकर आकाशमार्ग से ला सकता था, परन्तु किसी पौराणिक आख्यानों द्वारा ऐसा प्रकरण प्रकाश में नहीं आया है कि उसने कभी दुर्व्यवहार करने की चेष्टा की हो। तीसरे, स्वयंम्वर के समय भी उसने और वाणासुर ने शिव धनुष को छुआ तक नहीं था- "रावन वान छुआ नहि चापा"। वाणासुर को तो शिव जी ने अभय दान दे दिया था और उसका अहङ्कार भी टूट चुका था। रावण का धनुष को छूने से परहेज अवश्य रहस्य कारक है। वह किसी न किसी वहाने झगड़ा ठानकर राम के हांथों मारे जाने से प्राप्त होने वाली सद्गति का जरुर मुरीद था।

इसी के साथ सीता जी सदैव नीचे ही दृष्टि रखती थी। यह किसी भय के कारण नहीं वल्कि स्वाभाविक रूप से लज्जावश एवं विनीत भाव को एक साथ करने के निमित्त ही भूमि की ओर निगाह रखती थी। भूमि पुत्री यदि भूमि की ओर विपत्तिकाल में कातर दृष्टि से देखें-इसमें कोई विस्मय कारक वात भी नहीं है, अगर यह मान लें कि सीता जी वस्तुतः अग्नि में प्रविष्ट होकर निशाचरों के विनाश तक अग्नि में निवास का प्रभु से निर्देश पा चुकी थी, यह उनका प्रतिविम्व

मात्र ही था- तो विष्णु भी अपनी शेष शय्या पर विराजमान थे, राम में अपनी प्रभा अन्तर्हितकर रखी थी- उसी भाँति रावण भी पुरानी शाप के कारण ही वर्तमान स्वरूप धरे था-वस्तुतः वह भी और ही था- स्वयं हनुमान जी भी शिव ही थे- सभी देवगण रीछ-वानर के रूप में अवतरित थे, शेष जी वस्तुतः विष्णुशय्या के रूप में सागर में थे, धरती को सिर पर धरे भूमि के नीचे थे लेकिन वे लक्ष्मण रूप में यहाँ भी उपस्थित थे। यही नहीं प्रायः सभी सभी पात्र एक दूसरे के विषय में पूर्ण जानकारी भी रखते थे जिसका आगे उल्लेख किया जायेगा। साथ ही यह भी सदैव स्मरण रखना चाहिये कि उद्भव-स्थिति-संहार कारिणी सीता की छाया या प्रतिविम्ब को भी रावण मोहनिद्रा में डाल पाता यह कपोल कल्पना ही है-जब कि महामाया ने विष्णु तक को योगनिद्रा में डाल रखा था-वह नित्य स्वरूपा है-अजन्मा है-उन्होंने तो मधु-कैटभ तक को मोह निद्रा में बाँध रखा था-(मार्कण्डेय पुराण-महामाया-महालक्ष्मी का प्रादुर्भाव प्रखण्ड), वे आदि शक्ति स्वरुपा रावण से न तो भय कर सकती थी- न रावण किंचित् अपमानित या प्रताड़ित ही कर सकता था- यह तो शक्ति-शक्तिमान का, महिमा-महिमान का, पूर्व निर्धारित घटनाक्रम एक स्वाभाविक रूप में घटित हो रहा था ।। अस्तु ।।

उस समय सीता जी ने घास की ओट में अपना मुँह करके रावण से कहा- "अरे पतगें! तेरे जलने का समय निकट आ रहा है। हृदय में अपने स्वामी का स्मरण कर आगे कहा' "अरे अधम! प्रभु के सम्मुख तो जुगनू की हैसियत का भी तू नही है और सोंचता है कि इससे नलिनी (कुमुदनी-कौमुदी-कमलिनी) खिल उठेगी। अरे मूठ! यही मन में समझ सोंच ले! क्या अपने पूर्वजन्म के बारे में रघुवीर के वाणों के आगे पतगें जैसा झुलस जाने की सुधि नहीं है? तू तो त्रिकालदर्शी होने का दम भरता है। तेरा साहस था तो प्रभु के सामने से मुझे हरण कर लाता। अरे अधम! निर्लज्ज!! तुझे क्यों कर लाज आयेगी।"

अपने को खद्योतं (जुगनू) जैसा और रघुनन्दन को सूर्य जैसा सुनकर अन्दर से तो भयभीत हुआ, शर्माया भी, लेकिन खिसयानी हँसी दिखाता हुआ कहने लगा।- ।। दो सं० ९ तक।।

चौ०-सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।।
नाहि त सपदि मानु ममवानी। सुमुखि होत न त जीवन हानी।।
स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करिकर सम दस कन्धर।।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुन सठ अस प्रवान पनपोरा।।
चन्द्रहास हरू मम परितापं। रघुपति विरह अनल संजातं।।
सीतल निसत वहसिवर धारा। कह सीता हरू मम दुख भारा।।
सुनत वचन पुनि मारन धावा। मय तनयाँ कहि नीति बुझावा।।
कहेसि सकल निसि चरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु विधि त्रासहु जाई।।
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना।।

दो०-भवन गयउ दस कन्धर, इहाँ पिसाचिनि वृन्द।
सीतहि त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मन्द ।।९०।।

भाव-

सभी की उपस्थिति में सीता के व्यंग्य वचनों से खिसियाया हुआ रावन बोला- "सीता! तूने मेरा अपमान किया है। इस तेजधार वाली तलवार से तेरा सिर काट डालूंगा। नहीं तो तुरन्त मेरी बात मान ले। नही तो सुन्दर मुख वाली! तेरा जीवन समाप्त होने को ही है। उसने भयप्रद बातें कहकर सीता का डराना चाहा था। किन्तु सीता ने उल्टे और चुटीली बातें कहकर मानों उसे ही चुनौती दे डाली हो। वह बोली- "अरे धूर्त! कपटी!! सुन!!! स्वामी की नील कमल की आभा-सी हांथी की सूंड़ के समान, वह संत्रास को हरने वाली, भुजायें मेरे कण्ठ में पड़ेगी या उस पर तेरी तेजधार वाली तलवार से यह सिर ही कण्ठ से विलग हो जायेगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।" और फिर चाँदनी को निवेदित कर बोली- "ओ शीतल चाँदनी! तू स्वामी की विरहाग्नि से तप्त मेरी देह को शीतल कर। मुझे विरह दुःख से त्रास दिला। रात के रूप में तू प्रवहमान है। मेरे उत्ताप मिटा।

सीता के इन वचनों को सुनकर फिर इस तरह का दिखावा करते हुये लपका कि मानो तलवार चला ही देगा। तभी मन्दोदरी ने कई प्रकार के नीतिवाक्य सुनाये कि स्त्री पर हाथ उठाना कायरता होती है। वीरता समान वल वाले को ही दिखानी चाहिये। ऐसा करके तो हे प्राणनाथ! अपनी कमजोरी और अनीति ही प्रदर्शित कर रह हो। इसका कुछ प्रभाव हुआ और पीछे हट आया और सभी निशिचरियों को पास बुलाकर कहा कि सीता को अनेक तरह से भयभीत करो और बीच-बीच में यह भी कहते जाना कि यदि एक महीने में भी मेरी बात नहीं मानी तो उसे तलवार से मारकर प्राणांत कर दूंगा। और उसके वहाँ से जाते ही राक्षसियाँ भाँति-भाँति के डरावने रूप दिखाकर और डरावनी बोलियाँ बोलकर डराने लगी। वे डरती क्या-किन्तु इससे उनका ध्यान राम के चरणों से बीच-बीच के व्यवधानों से किंचित हट जाने से मन की व्याकुलता बढ़ा देता था। और इस बीच तरह-तरह की कल्पनायें मस्तिष्क को उलझाने लगती थी।। दो० सं० ९० तक!!

चौ०-त्रिजटा नाम राक्षसी एका। राम चरन रति निपुन विवेका।।
सबन्हौ बोलि सुनायेसि सपना। सीतह सेइ करहु हित अपना।।
सपने बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नगन दस सीसा। मुण्डित सिर खण्डित भुजबीसा।।
ऐहि विधि सो दच्छिनदिसि जाई। लंका मनहु विभीषन पाई।।
नगर फिरी रघुराई दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गये दिन चारी।।
तासु वचन सुनि ते सब डरी। जनक सुता के चरनन्हि परी।।

दो०-जहँ तहँ गई विकल सब, सीता कर मन सोंच।
मास दिवस बीते मोहि, मारहि निसिचर पोंच।।११।।

भाव-

एक राक्षसी त्रिजटा नाम की थी जो नियम संयम से राम के चरणों में प्रीति रखती थी और विवेक युक्त वचन ही सदैव बोलती थी। विभीषण से उसके विचार मिलते जुलते थे। यह भी 'लंकिनी' जैसी थी जिसे मजबूरी वश ही रावण की आज्ञा का अनचाहे पालन करना पड़ता था। उसने सबको अपने निकट बुलाया और अपने स्वप्न की बाते सभी को सुनाने लगी। बोली- अभी कुछ देर नहीं हुई है। हम सब रावण के पापों में क्यों भागीदार हों? लगता है मेरा सपना अब सच ही होने को है। इस पर वे सब सशंकित हुई और पूछने लगी कि ऐसा क्या सपना है? त्रिजटा ने कहा- "मुझे जो दिखाई पड़ा वह यह था- बानर ने लंका जलाकर राख कर दिया और राक्षसी सेना भी तबाह कर दी। रावण जो वस्त्र रहित होकर गधे पर सिर मुड़ाये हुये बैठा था। अब तो मुझे लगने लगा है मानो लंका अब विभीषण को ही मिल गई हो। नगर भर में रामचन्द्र की दहशत फैली हुई है और चारों ओर सन्नाटा है। और उसी समय रामचन्द्र जी ने किसी को भेजकर सीता जी को बुलवा लिया है। मुझे विश्वास हो गया है कि अब यह सपना दो चार दिनों में सच होना ही चाहता है। यह सुनते ही वे राक्षसियाँ भयभीत हो गई और सीता जी के पैरों पर गिरकर अपने किये व्यवहार की क्षमा माँगनें लगी। और वहाँ से इधर उधर चली गई लेकिन सीता जी के मन में रावण की एक माह में मार डालने की बात रह रह कर याद आकर बेचैन करती रहती थी यह ध्यान आते ही राम के चरणों से किंचित् ध्यान हटने से उन्हें बहुत उलझन होने लगती थी।। दो० सं० ११ तक।।

चौ०-त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु बिपति संगिति तैं मोरी।।
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब सहि नहि जाई।।
आनिकाठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी।।
सुनत बचन पद गहि समु झायेसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनायेंसि।
निसि न अनल मिल सुनइ कुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।।
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला।।
देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा।।
पावक भय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहि जानि हत भागी।।
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करू हरू मम सोका।।
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। सोछन कपिहि कलप सम बीता।।

सो०-कपि करि हृदयं बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।

जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठिकर गहेउ ।।१२।।

चौ०-तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर।।
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदयँ अनुमानी।।
जीति को सकइ अजय रघुराई। मायातें असि रचि नहि जाई।।
सीता मन विचार कर नाना। मधुर वचन बोलेउ हनुमाना।।
रामचन्द्र गुन बरनै लागा। सुनतहिं सीताकर दुख भागा।।
लागी सुनैश्रवन मन लाई। आदिहु ते सब कथा सुनाई।।
श्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कही सो प्रगट होत किन भाई।।
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ। फिरि बैठी मन विस्मय भयऊ।।
राम दूत मै मातु जानकी। सत्य सपथ करूना विधान की।।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी।।
नर बानरहि संगकहु कैसे। कही कथा भइ संगति जैसे।।

दो०-कपि के वचन सप्रेम सुनिमन उपजा विस्वास।
जाना मनक्रम वचन यह, कृपा सिधु कर दास ।।१३।।

भाव-

फिर ध्यान त्रिजटा की तरफ गया तो थोड़ी शक्ति मिली। उससे हाथ जोड़ बोली- 'माता! इस विपत्ति में अकेली तुम्ही साथ देने वाली हो। ऐसा कोई उपाय करो जिससे मैं यह शरीर ही त्याग दूँ क्योकिं अब असहनीय विरहाग्नि से मैं बहुत प्रताड़ित हो चुकी हूँ। अगर मेरा अपयश का समय आये उसके पहले ही मैं यह चाहती हूँ लकड़ी लाकर चिता बना दो। मैं उसमें प्रवेश होंऊ और तुम उसमेंआग लगा दो जिससे मैं अपने स्वामी के चरणों में प्रीति में प्रतीति करवा सकूँ। क्यों कि प्रभु की निन्दा और उन पर व्यंग्य वचन सुनते मेरे कान पक गये है और रावण के वचन काँटें की भाँति कानों में लगते हैं। त्रिजटा यह सुन बहुत दुःखी हुई। सीता के पैरे पकड़े उन्हें अनुनय विनय कर शान्ति देने वचन सुनाये और रामचन्द्र जी का यश-बल-प्रताप और शौर्य-पराक्रम का बखान कर सीता के मन को सान्त्वना दिया और धैर्य धरने को कहा। बोली-पुत्री! रात के समय अग्नि मिलना मुश्किल है। तुम अपने मन से प्रभु के चरणों से ध्यान हटने ही न दो इसी से तुम्हे शीतलता का अनुभव होगा। और दिलासा देकर घर को चली गई।

सीता मन में सोंच रही थी कि भाग्य ही प्रतिकूल हो गया है। वरना आग तो मिल ही जाती। अब न तो आग ही मिलेगी और न यह शूल जैसी चुभन ही जायेगी। दूर से आकाश में अंगारे दिखाई देते है लेकिन धरती पर एक भी तो नहीं आता। चन्द्रमा अग्निमय होते हुये भी मानो भाग्य हीन जान आग नही गिराता। फिर अशोक के अरूणिम पत्तों को देखकर फिर अग्नि की ही सुरति कर कहने लगी- तू अशोक है तो अपने नाम को सत्य करते हुये आग की तरह अपने

रक्तिम पत्तों से आग पैदा कर दे और मेरे विरह को अन्तिम छोर तक ले जाकर मुझे टूटने से बचा।

सीता को अति उग्र विरहाग्नि से दग्ध देख यह क्षण हनुमान जी को कल्प के समान बीता और वज्र शरीर बजरंगी ने हृदय को भी कुछ देर को वज्र कर लिया।

फिर कुछ सोंचविचार कर हनुमान जी ने राम जी की दी हुई अँगूठी नीचे डाल दी। और सीता जी के मन में उठ रहे विचारों के अनुसार ही उसे अग्नि गिरी जान प्रसन्न मन उसे उठाया। उस पर 'राम' अंकित था। चकित हुई। यह तो उनके स्वामी की ही अँगूठी है। लेकिन यहाँ कैसे और किस तरह गिरी? हर्ष-विस्मय और साथ ही अनिष्ट की परिकल्पना से मन और उद्विग्न हो उठा। वे तो अजेय हैं। उनसे कौन अँगूठी छीन सकता है? यह मायावी रावण के निशाचर गण भी नहीं कर सकते कि हूबहू वही अँगूठी बनाकर डाल दें। तरह तरह के विचार, अच्छे बुरे विचार मन में कौंध रहे थे कि हनुमान जी के अत्यन्त मीठे वचन सीता के कानों में गूँजे- अरें?! यह तो कोई मेरे स्वामी के गुणों का गानकर रहा है? कौन हो सकता है यह? यही सोंचती हुई तथा राम कथामृत बिन्दुओं का पान कर शान्ति प्राप्त करती हुई सीता पूरी तरह से एकाग्रचित होकर सुनने लगी फिर बोली- जिसने कानों में अमृतमय कथा-बिन्दु डाले हैं, हे भाई! सामने क्यों नहीं आते!! तब हनुमान जी समीप गये और सामने पहुँचने पर सीता ने मुख दूसरी दिशा में कर लिया।

हनुमान जी बोले! माता! मैं रामदूत कपि हनुमान हूँ यह मैं कृपा निधान भगवान की आन और सौगन्ध खाकर कहता हूँ। यह अंगूठी मैने स्वयं गिराई है इसे राम जी ने पहचान हेतु आपके पास मेरे द्वारा भिजवाई है कि मै इधर से कुछ आपसे चिह्न पाकर उन्हे दिखा सकूँ जिससे प्रभू को आपकी सुधि की जानकारी हो सके। सीता जी ने राम जी की कपिवर से संगति कैसे हुई-यह पूछने पर पवन तनय ने पूरा हाल बताया।

शान्तिदायक वचनामृत बिन्दुओं से सीता की विरहाग्नि शान्त हुई। मन को विश्वास हो गया कि कपिवर मन वचन से राम जी के सच्चे भक्त है और सोंचते ही नयन सजल हो गये।। दो०सं० १३ तक।।

चौ०-हरिजन जान प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी।।
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना।।
कोमल चित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई।।
सहज बानि से वक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक।।
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहि निरखि स्याम मृदु गाता।।
बचन न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता।।

मातृ कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता।।
जनि जननी मानहुँ जियँ ऊना। तुम्हते प्रेभु राम के दूना।।
दो०-रघुपति कर सन्देसु अब, सुनु जननी धरि धीर।
असकहि कपि गदगद भयउ, भरे विलोचन नीर।।१४।।

भाव-

पवन पुत्र के आने मात्र से ही जानकी जी को मनस्तोष हुआ उससे साराका सारा उत्ताप मलयवत् हो गया भगवान के चरण कमलों में इतनी रति पवन पुत्र की जान सीता के हृदय में उनके प्रति वात्सल्य भाव उमड़ आया। नेत्र तो पहले से ही डवडवाये थे, अश्रुधार स्वाभाविक रूप से श्रावित हो चली। प्रेम पुलक से व्याप्त हृदय में आशा और विश्वास का समागम हुआ। और अभिभूत होकर बोली-पुत्र! विरह सागर में डूबती-उतराती मुझको जहाज मिल गया और मेरा डूबने का अन्तर्भाव तिरोहित हो गया। पुत्र तुम पर वलिहारी हूँ कि मेरे प्राणनाथ के चरणों के सेवक हो। मै तो जैसे हूँ-तैसे हूँ-मेरे प्राण वल्लभ और पुत्रवत् मेरे देवर की कुशल क्षेम सुनाओं। सुखागर प्राणनाथ जिनके वाण ने खरदूषण को पल मात्र में धराशायी कर दिया था-रावण कोई अधिक तो है नहीं-उनकी लीला मात्र है। लेकिन प्राणवल्लभ का दयालु एवं नवनीत सा कोमल स्निग्ध चित्त कृपा-तत्व का आगर है। कृपा करना उनकी प्रकृति है लेकिन किस कारण हृदय निष्ठुर हो गया है-यह जानने में असमर्थ हूँ। अवश्य ही कोई खास वात होगी। रघुवंशी तो अपनी आन-मान की रक्षा हेतु वड़े से वड़ा त्याग करने में संकोच नहीं करते। अच्छा यह तो कहो-क्या रघुवर यदा कदा कुछ मेरे विषय में कहते सुनते हैं? और हे तात! क्या कभी उन श्यामल कोमल निर्मल आभावान् प्रिय प्राणनाथ के दर्शन से मेरे नेत्र इस जलन एवं सन्ताप से मुक्त होकर शीतल हो पायेंगे? वह कुछ आगे कहती कि आवाज भर्रा गई। गला रूँध गया। शव्द आते नहीं। नयन इस कारण वन्द किये है कि खोलूं तो फिर तप्त अश्रु प्रवाह जारी हो जोयगा। अपने अन्तर्भाव अपनी हिचकियों से हनुमान जी को सुना रही है। फिर कुछ कहना चाहा तो मात्र यह कह सकीं-अहह नाथ! क्या इस कदर भुला दी जाने लायक ही रह गई।

अव तो हनुमान के धैर्य ने भी धैर्य खो दिया फिर भी अवसर की सुधि करके वहुत ही मीठे, नम्रता भरे शव्द उचारे। वह वहुत ही रूक रूक कर एक शव्द धीमे बोलते थे कि कहीं हिचकी आकर शव्द अधूरा न रोक दें। वहुत ही मार्मिक क्षण थें। हे माता! प्रभु कृपा सिन्धु लखन समेत कुशल क्षेम से है। दो०सं० १४ तक :-

चौ०-कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भये विपरीता।।
नवतरु किसलय मनुहँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू।।
कुवलय विपिन कुन्त वन सरिसा। वारिद तपत तेल जनु वरिसा।।
जेहित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा।।

कहेउ तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई।।
तत्व प्रेम कर मम अरू तोरा। जानत प्रिया एकु मन मोरा।।
सो मनु सदारहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहि।।
कह कपि हृदयँ धीर धरू माता। सुमिरू राम सेवक सुखदाता।।
उर आनुह रघुपति प्रभुताई। सुनि मम वचन तजहु कदराई।।

दो०-निसिचर निकर पंतग सम, रघुपति वान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरूं, जरे निसाचर जानु।।१५।।

और हे जननि! आपके दुःखों की मात्र कल्पना से ही वह कितने अशान्त एवं दुःखी रहते हैं कि मैं किन शब्दों में कहूँ? वस यही समझ लो माता! वे तुमसे दूने दुखी रहा करते हैं और सुग्रीव ने, जो, माता श्री! वस्त्र आकाश मार्ग से आपने फेंका था- उसे जब राम जी के मांगने पर दिया तो वें हृदय से लगाते हुये अपने आँसू न रोक पाये। माता!!! मैं तो उस क्षण का प्रत्यक्ष साक्षी हूँ।।दो०सं० १३ तक।।

अव मातु सीते! मेरे प्रभु का दिया सन्देश भी सुन लो। धीरज रखे रहो और कपिवर की आँखें फिर पुलक जल से पुलकित हो गई। आंसू पोछने की कोशिश भी नहीं की। और कहने के प्रयास में वस यही कहकर रहे गये कि राम जी ने कहलाया है और फिर हिचकी भर गई। कुछ संयत होकर धीरे से कहा- "प्रिय सीते! तुम्हारा विछोह क्या हुआ, सभी कुछ-सभी कोई मुझसे विमुख है। नवीन कोपलों की लाली आग जैसी लगती है, रात्रि तो काल रात्रि ही वनकर आती है और शीतलता के लिये विख्यात चन्द्रमा, सूर्य जैसी तपन देता रहता है कमल पंखुरियों की नोंकें भाले जैसी लगती है, मानों मेरे शरीर को ही वेध देंगी यह चौमासा कैसे बीता-यह किन शब्दों में कहलाऊं। जब वरसे तो गर्म तेल की बूँदों जैसे ही वरसे। वायु की शीतलता को आखिर क्या हो गया कि साँपों की फुफकार जैसी तचा करती है-उसकी सुखद गंध एवं मन्द-मन्द वहना-मानों भुला गये हैं। मनोभाव शब्दों में किस भाँति प्रकट करूं। कहने को भी लोग उपहास न करने लगे, सो अन्दर ही अन्दर कुहन हुआ करती है। कहने सुनने से दुःख कुछ कम हो जाया करता है। लेकिन कहूँ भी तो किससे? यह दुःख कौन अनुभव कर सकता है? मेरे-तुम्हारे प्रेम के सत्व को, सार को मन ही जानता है- सो भी सदैव तुम्हारे पास ही रमा रहता है। इसी से मेरे और अपने प्रेम के सार तत्व को जान लो। तुमसे छिपा ही कव है? यह सुनते ही प्रेम में मगन जानकी जी का मन अपने शरीर से अलग होकर अनुभव और कल्पना लोक में विचरने लगा और फिर उनका अन्तः करण का लगाव व्यग्रता बन उभर आया। और भी वह वेचैन होती कि कपिवर हनुमान जी ने कहा- मातेश्वरी! हृदय में धीरज रखो और उन धैर्यवान कृपानिधान की याद करो। उनकी जो याद करता है उसे वे प्राणपण से अभय दान देते हैं। यह उनका स्वभाव ही है। अहैतुकी कृपा की वर्षा करने वाले रघुपति-राघव का वैभव मन में याद करो और जो मैं कहता हूँ उससे हृदय में

हीनभाव त्याग कर साहस और शौर्य की सुधि करो जिसकी हे मइया! तुम स्वयं प्रतिमूर्ति हो,

मेरे सर्वस्व, जगत्राता राम जी के वाणों की भयंकर ज्वाला तो तुमसे छिपी नहीं है-उस ज्वाला में निशिचर-समूह पंतगों की मानिन्द स्वाहा होने को ही है-ओ जननी!! कुछ ही विलम्ब है। वह भी उनके चलते नहीं है यह तुम स्वयं शीघ्र ही जानोगी तव हेमाता! तुम्हारा संत्रास जाता रहेगा।। दो० १५ तक।।

चौ०-जौ रघुवीर होति सुधि पाई। करते नहि विलम्ब रघुराई।।
राम वान रवि उएँ जानकी। तम वरुथ कहँ जातुधान की।।
अवहिं मातु मैं जाऊँ लवाई। प्रभु आयसु नहि राम दोहाई।।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुवीरा।।
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं।।
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातु धान अति भट बलवाना।।
मोरे हृदय परम सन्देहा। सुनि कपि प्रकट कीन्हि निज देहा।।
कनक भूधरा कार सरीरा। समर भंयकर अतिवल वीरा।।
सीता मन भरोस तव भयऊ। अतिलघु रूप पवन सुत लयऊ।।

दो०-सुनु माता साखामृग, नहि वल वुद्धि विसाल।
प्रभु प्रताप ते गरूड़हिं, खाइ परम लघु व्याल।।१६।।

भाव-

अभी तक तो आपकी खोज खवर ही नहीं लगी थी अन्यथा उन्हें पहले से सुधि मिली होती तो वे नाहक क्योंकर विलम्ब करते? उनके वाण का प्रताप मइया जानती ही हो। सूर्यवंशी के वाण को सूर्य ही जानों। उसके आगे भला राक्षसों की सेना जो तमों रूप है, कहाँ टिक सकेगी। उसके तेजो पुञ्ज में तो वह राक्षस सेना का अन्धकार समूह क्षण मात्र में तिरोहित हो जायेगा। प्रभु के वाण का प्रताप तो अतुलनीय है ही-यदि प्रभु आज्ञा करते तो मैं इसी पल आपको लिवा ले चलता। राम जी की सौगन्ध-जननी! राक्षस गण कुछ न कर पाते और न कुछ कर पायेंगे। बस कुछ दिन ही और धीरज रखो माता। अन्य कपि वीरों सहित प्रभु स्वयं आयेंगे निशाचरों को नष्ट कर तुम्हें ले चलेंगे और उनके सुयश का अन्य सुर-मुनि समेत नारद जी वखान करेंगे। नारदादि के यशोगान की प्रतिध्वनि सारे ब्रह्माण्ड में गूजेंगी। सीता जी को कुछ तसल्ली मिली लेकिन पवन तनय के आकार को देख कर बोली-अन्य कपिगण भी तुम्हारे जैसे होंगे। भला वे महाभयानक दैत्यों को कैसे विजय कर पायेंगे, विना देर किये पवन पुत्र ने अपने लघु शरीर को महाविस्तारित किया जो स्वर्ण-शैलाभ, वीर रस युक्त अत्यन्त रौद्र एंव भयानक, धैर्य युक्त तथा तेजोमय था-सीता जी उस स्वरूप को देखकर भली प्रकार आश्वस्त हो गई और इससे उनके अन्दर व्याप्त सन्देह-अविश्वास तथा

अनहोनी की सम्भावना से आतुरता भाव तुरन्त दूर हो गया। विगत-सन्देह जानकी को देख कपिराज ने फिर से लघु शरीर बना लिया और हाथ जोड़ माथा झुकाकर बोले-"जननी, वानर बल तथा बुद्धि में कम ही होते है लेकिन उनमें बल और बुद्धि को तो प्रभु के प्रताप ने बहुगुणित कर दिया है। यह तो प्रभु की महिमा ही है एक नन्हा सा साँप गरुड़ को भी खा सकता है जब कि सर्प गरुड़ जी के भोज्य होते है। यह प्रभु के चरणों की सेवा-भक्ति तथा प्रीति के प्रभाव का ही फल है माता।। दो०सं० १६ तक।।

चौ०-मन सन्तोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी।।
आसिप दीन्ह रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुतहोहू। करहूँ बहुत रघुनायक छोहू।।
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनिकाना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।
बार बार नायेसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा।।
अब कृत कृत्य भयउं मै माता। आसिप तव अमोघ विख्याता।।
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुन्दर फलरूखा।।
सुनु सुत करहिं विपिन रखवारी। परम सुभट रजनी चर भारी।।
तिन्ह कर भय माता मोहि नाही। जौ तुम्ह सुख मानहु मनमाही।।

दो०-देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु।।१७।।

भाव-

सीता जी हनुमान जी की राम के चरणों में अगाध प्रीति और अटूट विश्वास जान अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुई। सारा सन्ताप जाता रहा। प्रिय के विरह परिताप से दग्ध जानकी जी का हृदय प्रभुकृपा प्राप्त अञ्जनी नन्दन के सन्देश सुनानें के साथ ही उत्तरोत्तर तोषित और प्रभु प्रेम से पोषित हो गया पवन सुत जैसा विनयावनत भक्त एवं प्रभु की कृपा से सतत् प्रतापवान तेजवान् और असीम बलवान् भला दूसरा हो भी कैसे सकता था क्यों कि उनकी भक्ति बदले में कुछ पाना ही नहीं चाहती थी, यदि कुछ मांगे मिलता भी तो पवन पुत्र भक्ति में ही अधिकतम तल्लीनता स्वीकारते। भला ऐसा भक्त क्यों कर प्रभु का प्रियपात्र न हो? राम का परम प्रिय समझ माता जानकी ने बल एवं शील का अक्षय स्रोत बनने का अमोघ आशीर्वाद प्रदान किया क्योंकि पूर्णतः सच्चे हृदय से, पूरी तरह से सच्चे पात्र को ऐसा आशीष मिलना ही था। हे तात! तुम इसी वय के, सदैव मेरे प्रथम पुत्र ही बने रहो अर्थात अमर भी हो जाओ और यदि मेरे प्रभु के चरणों में मेरी प्रीति सच्ची एवं निष्कपट है-तो यह भी कहती हूँ कि प्राणनाथ दया निदान कृपालु राम जी तुम पर सदैव ही कृपा करते रहें- "प्रभु कृपा करते रहे" कानों मे शब्द पहुचते ही अश्रु बनकर नेत्रों से निकल पडे और बजरंगी को हर्षयुक्त रोमाञ्च हो आया मानो रोम रोम के वासी राम ने सीता जी के आशीर्वाद मे हामी

भर दी हो। वह अपने को रोक नहीं पाये और धीरे-धीरे झुकते हुये माथा मइया के चरणों में डाल दिया। सीताजी माथे पर वात्सल्य भरे हाथ फेरती-उन्हें उठाती लेकिन पवन तनय फिर चरणों पर सिर धर देते। सीता जी का मुखमण्डल भी अश्रुसिक्त हो गया फिर हनुमन्त लाल बोले माँ! मैं तो कृत कृत्य हो गया क्योंकि आपका आशीर्वाद अक्षय अमोघ (जो निष्फल न जाय) है, यह मैं पहले से सुन चुका हूँ जिसे सभी जानते हैं। हे जननि! मैंने मन में ठान रखा था कि प्रभु के काज किये बिना न तो मैं विश्राम करुंगा और न कुछ अन्न जल ही ग्रहण करुंगा। माँ को पाकर तो बिना भूख भी बच्चे को भूख लग आती है। मातेश्वरी!! अब तो मुझे बड़े जोर की भूख लगी है। तरुओं में सुन्दर पके फल देख तो क्षुधा अति से अतिशय हो गई है। मुझको काम करने का आदेश तो सभी से मिला किन्तु भूखा हूँ, यह कहने का साहस आपही से हुआ।

वैदेही बोली-पुत्र! बाग की रखवारी करने वाले निशाचर तो अतीव बलवान् है तुरन्त वायु नन्दन बोले, माता! सुनो!! यदि तुम्हे मेरा फल खाना अच्छा लगे तो हे माँ! उन दुष्टों का भय मुझे बिल्कुल नहीं है। बस, आपकी इच्छा, बल्कि आपकी इच्छा ही आज्ञा है माँ!!

यद्यपि सीता को पहले ही मारुति के बल बुद्धि पर पूरा विश्वास जम चुका था-इतने समय तक पूर्ण सान्त्वना प्राप्त जानकी जी का हृदय इस विश्वास को पूर्णतः आत्मसात् कर चुका था-इसलिये जानकी जी बोली, तात! प्रभु श्री राम के चरणों को हृदय में रखकर पके सुन्दर एवं मधुर फल इच्छा भरकर खा लो जाकर। जाओ पुत्र!! ॥ दो॰ सं॰ १७ तक ॥

चौ॰-चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरुतोरै लागा।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारे कछु जाइ पुकारे।।
नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक वाटिका उजारी।।
खाएसि फल अरू बिटप उजारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।।
सुनि रावन पठए भटनाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना।।
सब रजनीचर कपि संधारे। गये पुकारत कछु अधमारे।।
पुनि पठएउ तेहि अच्छ कुमारा। चला संग लै सुभट अपारा।।
आवत देखि बिटप गहि गर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा।।

दो॰-कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि।।१८।।

भाव:-

फल खाने की अनुमति देकर सिया जी मन में आश्वस्त एवं प्रसन्न थी। कपि ने भी माथा नवाकर राम जी को स्मरण किया और बाग में घुस गये। फल खाये और तरुओं की डाले तोड़ तोड़ डालने लगे। बाग बचाने के लिये तमाम निशिचर

लगे हुये थे जो बड़े बलवान् थे कइयों को तो हनुमान जी ने मार गिराया, बहुत लोग डरकर भाग गये और पूरा हाल रावण को सुनाने लगे- स्वामिन्! एक बहुत बड़ा बलवान् बन्दर बाग में घुस आया है और पूरी अशोक वाटिका उजाड़ डाली। फल खाकर फल वाले पेड़ों को तोड़ डाला। मना करने पर कई बचा रहे लोगों को मारकर वहीं डाल दिया। हम लोग किसी प्रकार जान बचाकर आ पाये हैं।

रावण बिल्कुल विचलित नहीं हुआ न अचरज ही किया बल्कि और तमाम सुभटों को भेजा। वे सकोप वहाँ पहुंचे जिन्हे देखते ही वज्र शरीर केशरीनन्दन जोर से दहाड़े और एक्के दुक्के छोड़कर बाकी को वहीं ढेर कर दिया। जो चोट खाकर प्राण बचाकर भाग गये थे, वे फिर गुहार लगाकर पहुंचे। यह गति देख रावण ने अपने पुत्र अक्षय कुमार को अगणित दैत्य सुभटों सहित भेजा। वह मल्लयुद्ध में बड़ा पारंगत था। हनुमान जी ने दूर से ही उसे देखकर ललकारा और पेड़ उखाड़ उखाड़ राक्षसों पर फेंकने लगे। चोट खाकर अक्षय कुमार मारा गया। अन्य तमाम रखवारे भी हताहत हुये। बच गये बलवान् निशिचर जो अपने को बहुत ही बलागार समझ कर अहङ्कार करते थे, हतप्रभ होकर रावण से पूरी बात बताते हुये बोले- स्वामिन्! वह बानर तो बड़ी सूझबूझ एवं बलवाला लगता है महाबलशाली अक्षय कुमार भी मारा गया नाथ!! कुछ खास उपाय सोंचिये!! ॥दो० सं १८ तक॥

चौ०-सनिसुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाथ बलवाना।।
मारसि जनि सुत बांधेसु ताही। देखअ कपिहि कहाँ कर आही।।
चला इन्द्रजित अतुलित जोधा। बन्धु निधन सुनि उपजा क्रोधा।।
कपि देखा दारून भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरू धावा।।
अति बिसाल तरू एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा।।
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।।
तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गज राजा।।
मुठिका मारि चढ़ा तरू जाई। ताहि एक छन मुरूछा आई।।
उठि बहोरी कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया।।

दो०-ब्रह्म अस्त्र तेहिं सांधा, कपि मन कीन्ह विचार।
जौ न ब्रह्मसर मानउँ, महिमा मिटै अपार।।१९।।

भाव :-

अक्षय की मृत्यु का समाचार जान अन्दर से दुःखित तथा बाहर से क्रोधित हुआ और इन्द्र को जीत चुके अपने पुत्र जिसकी दहाड़ मेघ के समान भंयकर थी, मेघनाद को बुलाया और कहा "पुत्र! जाकर देखो तो भला कहाँ का ऐसा बन्दर कहर ढा रहा है। लेकिन उसे मारना नहीं-केवल बांधकर ले आना-फिर देखा जाय कि वह कौन तथा कहाँ का उजड्ड बानर बाग में घुस आया है।"

यहाँ यह भी रहस्य ही है कि पुत्र को जिसने मार डाला हो, उसके एक से एक महाबली सुभटों को मार गिराया-इतना उजाड़ कर डाला-फिर भी सामान्य क्रोध दिखाते ही, वह भी इन्द्रजीत घननाद को वध करने से रोकते हुये मात्र पकड़कर लाने को ही निर्देशित किया मानो उसे पवन पुत्र के कारनामों का उसे पूर्वाभास हो चुका हो और यह विश्वास हो गया हो कि मेघनाद भी उसको मार नहीं पायेगा। यूँ भी, बालिनाम के वानर से अतीत में मार खा चुका था और जब बालि ने उसे अंगद के पालने में बाँध दिया था- तो बाल्य काल में पालने में झूलते हुये ही अंगद अपने पैरों से खेल खेल में लातों से रावण को मारा करते थे। बाद में बड़ा बेचैन देख जब बालि को दया आई तब उसको खोल दिया था और डाट फटकार कर भगा दिया था। रावण को वह पूरी घटना भूली हो-यह तो असम्भव है। वैसे भी कपि तथा मनुष्य जाति से वह घृणा तो करता था लेकिन अन्दर से अनहोनी के भय से डरा हुआ भी रहता था-तभी उसने केवल उसे बाँधकर लाने को ही कहा।

जैसे ही मेघनाथ वहाँ से चला-अपने भाई का वध उसके हाथ सुन-मन में बड़ा भारी क्रोध था और आगे बढ़ा जिसे दूर से देखकर ही वजरंगी को लगा कि कोई बड़ा योद्धा अब की बार आ रहा है। कटकटाहट युक्त गर्जनाकर वे दौड़े और एक बड़ा पेड़ उखाड़ा और रथ पर बैठे मेघनाथ पर प्रहार किया-मेघनाथ किसी तरह बच गया लेकिन रथ चकनाचूर हो गया और मेघनाथ को नीचे उतरना पड़ा। उसके साथ के योद्धा मन में पहले से ही भयग्रस्त थे जिन्हें कपि तनय मसल मसल अपने शरीर से रगड़ने लगे। सुभट बेचैन होकर छुड़ाने का प्रसास करते तब तक वे अधमरे हो जाते थे। फिर हनुमान जी मेघनाथ से मल्लयुद्ध में भिड़ गये जैसे मत्त गयन्द एक दूसरे से जूझ रहे हों। एक घूंसा मेघनाथ को मार पेड़ पर फिर चढ़ गये और कुछ पल के लिये मेघनाद को मूर्च्छा आ गई। जब उठा-तो- भाँति-भाँति की माया रची लेकिन वायु पुत्र को जीत सके-यह भला कैसे हो सकता था? तब मेघनाथ ने ब्रह्मास्त्र लिया जिसकी महिमा अक्षुण्ण एवं अमोघ तथा जगप्रसिद्ध है। उस महिमा को मन में प्रणाम करते हुये वजरंगी ने सोंचा कि उस के प्रहार को यदि मैं विफल करता हूँ-तो इस महिमा के खण्डन का दोष मेरे ऊपर लगेगा ॥ दो०सं० १९ तक॥

चौ०-ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहि मारा। परतिहुँ बार कटकु संधारा।।
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ।।
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बन्धन काटहिं नरग्यानी।
तासु दूत कि बंध तरू आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बंधावा।।
कपि बन्धन सुनि निसिचर धाये। कौतुक लागि सभा सब आये।।
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई।।
कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोक सकल सभीता।।

देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरूड़ अंसका।।

दो०-कपिहि विलोकि दसानन, विहसा कहि दुर्वाद।

सुतवध सुरति कीन्हि पुनि, उपजा हृदयँ विषाद।।२०।।

भाव:-

अत: उसके आते आते अञ्जनिपुत्र ने वहुतों को मार कर ढेर कर दिया और उसके प्रहार के शरीर पर लगते ही मारूति को मूर्च्छा आई जान नागपाश में बाँधकर मेघनाद लंका नगरी में लेकर चल दिया।

शिव जी कहते हैं कि हे भवानी! जिन राम जी का नाम जपकर ज्ञान युक्त होकर मनुष्य भवसागर पार होते है, उनका भी दूत कहीं बाँधा जा सकता है? लेकिन अपने प्रभु का काज अधूरा न रहे, साथ ही रावण के दरवार तक पहुँच कर अपनी पैठ वना सकूँ-यह सव मन में सोंच समझकर - साथ ही ब्रह्मवाण की महिमा भी वनी रहे-यह निश्चय कर स्वयं ही वन्धन में आ गये। यह खवर वड़ी जल्दी लंका में फैल गई। अनेक तमाशा देखने के लिये दौड़े और रावण की सभा में आ गये।

वहाँ ले जाये जाने पर वहाँ का ऐश्वर्य देख पवन नन्दन वड़े विस्मय में हो गये। दशो दिशाओं के दिग्पाल हाथ जोड़े, सिर झुकाये खड़े हैं, देवता गण भी डरे सहमें हाथ जोड़े काँप रहे है- रावण की भृकुटि हिलेगी-यही देख रहे है। यह वैभव देख कर भी, भय भञ्जन अञ्जनि नन्दन तनिक भी सशंकित नहीं हुये। जैसे सर्पों में गरूड़ निशंक रहता है, वैसे ही वायु पुत्र भी निर्भय खड़े रहे। उन सभी को तो वे पलक झपकते ही मार सकते थे इसी कारण भय व्याप्त न हो सका।

कपि को देख पहले तो उल्टी पुल्टी वर्जना युक्त वातें व्यंग्य पूर्वक कहते हुये हंसा। तुरन्त ही अक्षय वध की सुरति कर भीतर से दुख भी वहुत हुआ फिर भी विना अधिक उत्तेजना के वह संयत होकर कहने लगा। ॥ दो० सं० २० तक॥

चौ०-कह लंकेस कवन तै कीसा। केहिकें वल घालेहि वन खीसा।।

की धौ श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही।।

मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ वाधा।।

सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु वल विरचति माया।।

जाके वल विरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दस सीसा।।

जा वल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन।।

धरइ जो विविध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता।।

खर दूषण त्रिसिरा अरूवाली। वधे सकल अतुलित वल साली।।

दो०-जाके वल लवलेस तें, जितेहु चराचर झारि।

तासु दूत मैं जाकरि, हरि आनेहु प्रिय नारि।।२१।।

भाव:-

रावण ने कहा- "अरे वानर! कौन है तू? तू तो बलवान् दिखता नहीं-फिर भला किसके बल से बाग उजाड़ दिया। दो बाते हो सकती हैं। या तो अपने कानों से मेरे बारे में कुछ सुना नही हो या फिर किसी ने बहका दिया हो तुझे। तू बड़ा धूर्त्त, चालाक और निडर लगता है। फल खा लिये। कूद फाँद से पेड़ की डालें टूट टाट गई लेकिन रखवारी करने वाले सुभटों ने क्या बिगाड़ा था जो उन्हें मारा। आखिर बाग की रखवारी हेतु तो उनको भेजा ही गया था। मना करने पर उन्होंने क्या अपराध कर दिया कि बहुतों को मार डाला। क्या खुद अपने प्राणों का भय तुझे नहीं है क्या? बोल!!"

समीर नन्दन अविचलित होते हुये बोले- रावण! सुन!! जिस परब्रह्म के बल को और निर्देश को पाकर माया अनके ब्रह्माण्डों की सृष्टि करती है, जिसके बल एवं आज्ञा से ब्रह्मा सृष्टि रचते हैं, विष्णु पालन पोषण करते है और उसी के ही निर्देश एवं इच्छानुसार शिव जी प्रलय करते है और जिनके बल-वैभव से शेष जी अपने ऊपर समग्र पृथ्वी और उस पर स्थित पर्वत-वन-उपवन आदि धारण किये रहते हैं, जो नाना रूपधारी है और पृथ्वी को अकुलाया देख पृथ्वी पर दुष्ट कर्मों मे रत निशिचरों, शठों को दण्ड देने हेतु स्वयं अवतरित होते रहते हैं। तेरी मति मारी गई है-तू अपने नेत्रों से उसे देखकर भी भुलाने की चेष्टा कर रहा है-तेरे ही सामने जिसने शिव जी के कठोर धनुष को तोड़ कर सीता को वरा और तेरे जैसे अनेक शूरवीर कहलाने वालों के अहङ्कार को चूर कर दिया और सुन वह विश्वेश्वर ही है जिन्होंने खरदूषण को-जो तेरे सम बलवान था और वालि जिसे देखकर तुम भाग खड़े हुये थे-जिसने दो चार थप्पड़ ही केवल इसलिये तुझको मारे थे कि तुझे अपनी वीरता का अहङ्कार था-जिसके यहाँ पालने में बंधे अंगद के खिलवाड़ में पैरों की मार से तेरी कनपटी झन्ना गई थी-उसी के बल को तू भूल बैठा-जाने या अनजाने-यह तो तू ही जाने। कपि के इन व्यंग्य वचनों को सुनकर उसके चेहरे का रंग फीका पड़ गया और हवाइयाँ उड़ने लगी लेकिन बाहर से फिर वह बनावटी साहस और क्रोधयुक्त भाव दिखाता रहा-लेकिन शंकर सुवन कब रुकते बिना उसके काले चिट्ठे को खोले-बोले-"जिसके बल के सूक्ष्म अंश को पाकर तुझमें अहंभाव समा गया और उसकी बदौलत तूने चराचर-सभी को जीत लिया-अपने अहङ्कार को नहीं जीत पाया जिसके कारण तेरी यह हिम्मत पड़ी-कि प्राणतुल्य पत्नी का हरण कर लाया। अरे अधम! ओ निर्लज्ज!! मैं उन्हीं अखिलेश्वर का ही दूत हूँ रे अंहङ्कारी!!! ॥ दो॰ सं॰ २१ तक ॥

चौ॰-जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहस बाहु सन परी लराई।।
समर बालि सन करि जसुपावा। सुनि कपि बचन बिहँसि बिहरावा।।
खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव ते तोरेउँ रूखा।।
सबके देंह परम प्रिय स्वामी। मारहि मोहि कुमारग गामी।।

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनय तुम्हारे।।
मोहि न कछु बाँधे करलाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।।
विनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन।
देखहु तुम्ह निज कुलहि विचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी।।
जाकें डर अतिकाल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई।।
तासो वयरू कवहुँ नहि की जै। मोर कहे जानकी दी जै।।

दो०-प्रनतपाल रघुनायक, करूना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध विसारि।।२२।।

भाव :-

कपिवर वोले-"मुझे तुम्हारी प्रभुताई पता है जिसका तुम्हे इतना घमण्ड है। अरे मूर्ख तू इतना नादान क्यों वन रहा है? सहस वाहु से चुनौती देकर लड़ने गया था। उसे भूल क्यों गया? या फिर जानवूझ कर भुला रहा है। उसकी घुड़साल में लीद में पड़ा रहा वहाँ के वच्चों की कनवुच्चियों और चुकौटियों से व्यग्र अपनी हालत पर गिड़गिड़ाना तुझे क्यों भूल गया। और सुन! वालि से लड़ाई की चुनौती दिया। फल मिला। वह भी क्या तुझे नहीं याद रहा?

अरे लंकेस! वड़ी जोर की भूख लगी तो फल खा लिये। कमजोर डालें कुछ अपने आप-कूछ कूदने से टूट गई। यह तो वानर की आदतों में शुमार है। और फिर-अपना शरीर किसे प्रिय नही है-मुझे भी अपनी देह प्रिय है मैं काहे को मार खाता। तो भी कुमार्ग पर चल रहे राक्षसों ने मुझकों चोट पहँचाई तो भी मैंने सिर्फ उन्हीं दैत्यों को मारा जिन्होने हम पर हमला किया। तुम्हारा पुत्र अक्षय तो नाम का ही अक्षय था-मेर एक ही घूसें में मर गया तो मैं क्या करूँ? इस पर भी तुम्हारे दूसरे पुत्र ने मुझ पर ब्रह्मास्त्र चला दिया था। ब्रह्मवाण से मैं वेहोश हो गया। मेघनाथ मुझे नागपाश में बाँध लाया, लेकिन मुझे इस पर विल्कुल लाज नही आई क्यो कि मेरा तो एक ही उद्देश्य है-अपने स्वामी का सौंपा हुआ कार्य पूरा करूं-भले इसके लिये कैसी भी लज्जास्पद या प्रताड़ना की स्थिति से दो चार होना पड़े।

मैं हनुमान अपने मान को भी ताक में रख कर तेरे हाथ जोड़ उल्टे प्रार्थना करता हूँ क्यों कि मैं तुम्हारी पूरी वंशावली जानता हूँ। जबकि स्वयं तुम उसे पता नही क्यों-कुल के यश-मर्यादा आदि को भुलाने पर उसे मिट्टी में मिलाने पर तुले हो। अपने कुल की कानि को रख! उस पर अपयश का आडम्वर मत ओढ़ा!! अंहङ्कार को अव भी त्याग दे!!! क्यों कि अभी भी कुछ विशेष नहीं विगड़ा है। संशय मत कर!!! शरणागत - प्रणतपाल - भक्तभयहारी-खरारी - त्रिसिरारी को भज!!!

काल भी जिससे भय मानता है जो समग्र धरा को भले ही सुर-असुर आदि

कोई भी हो- अपने में आत्म सात् कर लेता है जो प्रणत होने पर, विनत होने पर बिना भेद के सभी का तारन हार है भले ही दैत्य वंश का हो-प्रह्लाद को उसी ने दुलराया! बलि को उसी ने कृतार्थ किया!! बालि को उसी ने कृतकृत्य कर दिया!!! अरे पथ-भ्रमित रावण। यदि अब भी तू मेरी मान और जानकी जी को वापिस कर दे- अभी विलम्ब नहीं हुआ-प्रभु का अवलम्ब तुझे मिलेगा क्यों कि मेरे प्रभु रघुनायक प्रणत की ताड़ना नहीं करते। खरदूषण-हन्ता अनन्त करूणा कर हैं। उनका वत्सल भाव ही उनके स्वरूप का मुख्य तत्व है। यदि तू उनकी शरण में जायेगा, अपने अहङ्कार के लिये क्षमा मागेंगा, तो वे अनन्त क्षमावान् तुम्हे क्षमा कर देंगे। तुम्हारे सारे अपराध जानते हुये भी वे बड़ी शीघ्रता से भुला देंगे-यह अपराध भुला देने की उनकी प्रकृति है, वे तुम्हें अभय दान दे देंगे फिर तू निष्कण्टक राज्य कर। रावण चुपचाप सुनता रहा। बीच बीच में रोमाञ्चित होता कि कौन सा कपि इतनी भेद भरी बातें जान और कह रहा है। अहङ्कार मद में भूला रावण भूल बैठा कि उसी का आराध्य देव इस रूप में-नागपाश में बंधा हुआ-अपना मान भुलाकर अपने भक्त हितार्थ अन्तिम क्षणों में एक अवसर और देना कह रहा है-कपि रूप में शिव जी कहते रहे। ॥दो०सं० २२ तक॥

चौ०-राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम्ह करहूँ।।
ऋषि पुलस्ति जसु विमल मंयका। तेहि ससि महुँ जनिहोहु कलंका।।
राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा।।
बसनहीन नहि सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी।।
राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाईबिनु पाई।।
सजलमूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गये पुनि तबहिं सुखाही।।
सुन दसकंध कहउं पन रोपी। बिमुख रामत्राता नहि कोपी।।
संकर सहस बिष्णु अज तोही। सकहिं नराखि राम कर द्रोही।।

दो०-मोहमूल बहु सूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहुँ राम रघुनायक, कृपा सिन्धु भगवान।।२३।।

भाव :-

हनुमन्त लाल कहते रहे- तुम अब भी राम के श्री चरणों को हृदय में बिठाओं इससे तुम्हारा मिथ्या दम्भ तथा अहङ्कार नष्ट होगा और तुम पुनः ज्ञान प्राप्त कर सकोगे और फिर तुम निर्भय लंका में रहकर शासन करो। तुम अपने पितामह के यश को क्यों अपने पाप से सान कर दूषित कर रहे हो? क्यों उनके निर्मल यशोचन्द में कलंक के धब्बे डाल रहे हो। कुछ मन में विचार शक्ति लाकर और वृथा का मोह और मद त्यागकर देखो तो भला-राम नाम से वाणी यथार्थ होती है। उसी से जिह्वा को अपने होने का पुण्य मिलता है। वह तो सब चराचर में रमता है, ऊसर में भी जमता है-वही परम तत्व है-परम प्राप्ति बिन्दु है-वही समता है-

वही ममता है-उसी ममता में ममता रखो-उसके समभाव का आनन्द लूटो-उसके अपराधों के भुलक्कड़पने से लाभ उठाकर लंका में अभय राज्य करो। कितने भी आभूषण पहन ले-लेकिन बिना वस्त्रों के स्त्री शोभा नहीं पाती-अरे देव रिपु! देवतत्व के शत्रु दशानन! उस महिमामय, गरिमामय प्रभु की अनपायनी भक्ति नहीं तो कुछ भी नहीं-उनसे विमुख होकर तुम्हे कौन बचायेगा? क्या मैं? अकेला मैं (शिवरूप हनुमान) क्या हजारों शंकर-विष्णु और स्वयं हजार रूप लेकर ब्रह्मा भी रामचन्द्र के वैरी को - क्षमाशील-दयाशील-कृपाशील-ममता-समता युक्त प्रभु राम के वैरी को नहीं बचा पायेंगे-कारण एक-केवल एक-अभिमान! क्यों? क्योंकि अभिमान ही मोह की जड़ है-दुखों का मूल तत्व है (ज्ञातव्य है कि शंकर जी ने सभी देवताओं से - जिनमें ब्रह्मा, विष्णु भी थे - यही कहा था कि जब तक रावण में अंहङ्कार के बीज नही पनपते तब तक मैं अपने भक्त का विनाश नहीं कर सकता) यह परोक्ष रूप से हनुमान जी ने बार बार, घुमा फिरा कर, कुल की बात सुनाकर, रावण के पिछले कृत्यों की सुरति कराकर, उसके पुत्र को मार कर, अनेक सुभट निशाचरों को मारकर- उसे बुरी तरह जलील कर - बेइज्जत कर समझाने की कोशिश किया किन्तु अंहङ्कार की पालिश से सब कुछ फिसलता गया।

फिर भी एक बार और समझाया-यदि तुम अंहङ्कार त्याग उन्ही कृपालु-दयालु रघुनायक--सुखदायक राम का भजन करो-अपराधों हेतु क्षमा मांगों-पुराना सब कुछ भुलाकर बिना कारण ही दीनों पर दया दिखाने वाले भक्त वत्सल श्रीरामजी तुम्हे क्षमा कर देंगे। लेकिन इतने पर भी उसके अभिमान के अंकुर नहीं सूखे ॥दोहा सं० २३ तक॥

चौ०-जदपि कही कपि अति हितवानी। भगति विवेक विरति नय सानी।।
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुरु बड़ग्यानी।।
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मो ही।।
उलटा होइहि कह हनुमाना। मति भ्रम तोर प्रगट मैं जाना।।
सुनि कपिवचन बहुत खिसियाना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना।।
सुनत निसाचर मारन धाये। सचिवन्ह सहित विभीषनु आये।।
नाई सीस करि विनय बहूता। नीति विरोध न मारिअ दूता।।
आन दण्ड कछु करिअ गोसाई। सबहीं कहा मन्त्र भल भाई।।
सुनत बिहँसि बोला दस कन्धर। अंग भंग करि पठइअ बन्दर।।

दो०-कपि के ममता पूंछ पर, सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ।।२४।।

भाव-

यद्यपि कपि रूप में स्वयं शिव जी ने भक्तिमय विवेकमय-मोहनाशक - विनय

युक्त तथा अत्यन्त हित करने वाली बातें ही रावण को समझाई लेकिन उसके दिलो दिमाग पर अंहङ्कार का पर्दा पड़ा हुआ था इसलिये उसी अभिमान में भरा रावण कहने लगा-अच्छा! वन्दर रूप में वड़ा ही ज्ञानी गुरु मिला है। वह अहंकार के आवरण से ढका आदि गुरु, आदि देव को पहचानता भी तो कैसे? वोला- अरे धूर्त! तूने तो दुष्टता की हद कर दी। तेरी मृत्यु अव निकट है। नीच कहीं का। मुझे शिक्षा देने चला है।

हनुमान जी ने फिर भेद युक्त वात कही-"इसका उल्टा ही होगा। क्यो कि तेरी कुमति यह वोल रही है"-यह सुनते ही वह आग वबूला हो उठा-वोला-"अरे इसको जल्दी से पकड़ कर मार क्यों नहीं देते? यह सुनते ही कई सुभट निशाचर मारने हेतु दौड़ पड़े। तव तक दरवाजे से विभीषण आते दिखाई पड़े जिन्होने यह सव देखकर रावण को प्रणाम कर वहुत चिरौरी किया कि यह विरोधी पक्ष का सन्देश वाहक दूत है। यह कूटनीति के विरूद्ध है कि इसको आपने मारने का आदेश दे दिया है। साथ में आये सचिव भी इससे सहमत लगे। विभीषण वोले- और कोई छोटा दण्ड इसको देकर वर्जना कर दें लेकिन इसके प्राण लेना अत्यन्त अनुचित और अनीति कर है सवने ही इसमें यह कहकर हामी भर दी यह नेक सलाह है।

यह सुनकर रावण विहँस उठा-कहा-"अच्छा, इसका कोई अंग काट लो-वल्कि ऐसा करो-वन्दर को पूँछ अधिक प्रिय होती है सो उसी पर कपड़ा लपेट कर तेल डालकर आग लगा दो। ॥ दो०सं० २४ तक॥

चौ०-पूँछहीन वानर तँह जाइहि। तवसठ निज नाथहि लइ आइहि।।
जिन्हकै कीन्हिसि वहुत वढ़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई।।
वचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना।।
जातुधान सुनि रावन वचना। लागे रचै मूढ़ सोइ रचना।।
रहा न नगर वसन घृत तेला। वाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।।
कौतुक कहँ आयेपुर वासी। मारहिं चरन करहिं वहु हाँसी।।
वाजहिं ढोल देहि सव तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ पुजारी।।
पावक जरत देखि हनुमन्ता। भयउ परम लघु रूप तुरन्ता।।
निवुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर मारी।।

दो०-हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरूत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि वढ़ि लाग अकास।।२५।।

भाव-

रावण कहता गया-"जब विना पूंछ होकर वन्दर वहाँ पहुँचेगा तो अवश्य यह अपने स्वामी को यहाँ लायेगा। देखूँ कौन है वह जिसकी यह इतनी ज्यादा डींग हाँकता हुआ वड़ाई कर रहा है"-यह सुन मन ही मन हनुमान जी स्वगत भाव से मुस्काये और वोले-"अब तो लगता है-शारदा सहाय हो गई और ठीक वैसा ही

हुआ। राक्षसगण रावण की बातें सुनकर उसी के अनुसार दौड़ कर कपड़े-तेल आदि लाने लगे। जितने कपड़े-तेल आदि वे लाते-कपि की पूँछ उतनी ही बढ़ती जाती-क्योंकि वे कोई साधारण बन्दर तो थे नहीं-जब सभी ने यह सुना कि नगर का बहुत सारा कपड़ा तेल आदि पूँछ में लगा दिया गया है तो जिज्ञासावश अन्य नगर वासी भी यह तमाशा देखने के लिये राजदरबार के सामने जमा होने लगे। उनमें कई लोग तो लातों घूसों से हनुमान जी पर प्रहार कर भाँति-भाँति से उपहास भी कर रहे थे। कई लोग ढोल आदि बजाकर तालियों की थाप देते हुये उन्हें नगर की सड़कों पर घुमाने चल दिये जिससे नगरवासी उसे करनी का फल चखते देख सकें। लेकिन शिव जी की लीला तो विचित्र है। उन्होनें पहले तो अपना रूप फिर छोटा कर लिया जिससे इधर से उधर आसानी से कूदफाँद सके। आग लगी जान हनुमान कूदकर झट से सोने की अटारी पर चढ़ गये-यह देखकर सभी निशाचरियाँ भयातुर हो उठी।

पवनपुत्र की सहायता हेतु उनचासो दिशाओं के पवन भगवान की प्रेरणा पाकर चलने लगे। इससे और उत्साहित होकर केशरी नन्दन ने जोर से अट्टहास कर भयंकर गर्जना किया और स्वरूप के उत्तरोत्तर बढ़ाते हुये आकाश पर्यन्त बढ़ गये। ॥दो०सं० २५ तक॥

चौ०-देह विसाल परम हरुआई। मन्दिर ते मन्दिर चढ़िधाई।।
जरइ नगर भा लोग विहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला।।
तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा।।
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरे सुर कोई।।
साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा।।
जारा नगरु निभिष एक माही। एक विभीषन कर गृह नाही।।
ताकर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।।
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परापुनि सिन्धु मझारी।।

दो०-पूँछ बुझाय खोइ श्रम, धरि लघुरुप बहोरि।
जनक सुताके आगे ठाठ भयउ कर जोरि ।।२६।।

भाव-

शरीर का तो बहुत विस्तार था किन्तु इतना हल्का कर लिया था ताकि एक से दूसरे मकान पर सुगमता से कूद कर जा सकें क्योंकि उनका उद्देश्य पूरी लंका को जलाकर क्षार कर देना था। नगर धू-धू कर जल उठा जिसमें से बड़ी भयंकर ज्वाला से करोड़ो लपटें आसमान छू रही है। हे तात! हे मात!! कोई तो पुकार चीख सुनो। कोई तो इस कठिन अवसर और विपदा से उबारो। हमने जो यह पहले कहा था कि यह कोई बन्दर नहीं है क्योकि बन्दर के बस का इतने बड़े बड़े पेड़ उखाडना, उन्ही की डालों से प्रहार करना किसी बन्दर के बस में यह

सव नहीं हो सकता।

यह साधु जन की अवज्ञा का प्रारम्भिक परिणाम है अभी और भी अनहोनी होनी है पलक झपकते ही लंका नगरी जल गई-एक विभीषण का घर जलने से वच गया लेकिन प्रभु की महिमा महान् है। हनुमान जी तो उन्ही राम के दूत है जिन्होने अग्नि की रंचना किया। हे पार्वती! इसी कारण हनुमान जी जलने से वचे रहे। फिर वे केवल दिखावे के लिये पूँछ वुझाने हेतु समुद्र में कूद गये। उनके कूदने का उद्देश्य पूँछ की आग वुझाना कदापि नही था। भला अजर अमर शिवावतार रामदूत, वजरंगी को आग से जलने का भय क्यों कर होता? वे तो अपने प्रभु शेषशायी विष्णु जी को उनके कार्य में प्रगति रिपोर्ट देने हेतु समुद्र में कूदे थे कि वहाँ प्रभु को ताजे हालात की जानकारी देने हेतु कूदकर पहुँचे थे जिनका अवतरण राम के प्रतिरूप हुआ था।

सभी को यह लीला दिखाते हुये पुनः कपि तनय जनक लली के श्री चरणों में उपस्थित हुये। पूँछ वुझी। शीश नवाकर-थकान दूर किया-क्यों कि वे पहले ही कह चुके थे-"राम काजु कीन्हे विनु मोहि कहाँ विश्राम" और अव कार्य तो हो ही चुका था। अव थकान लगी। तुरन्त ही विश्राम कर; तथा पुनः छोटा रूप वनाया और जनक सुता के आगे हाथ जोड़ खड़े हुये और बोले।। २६ तक।।

चौ०-मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीहा।।
चूड़ामणि उतार तव दयऊ। हरष समेत पवन सुत लयऊ।।
कहेउ तात अस मोर प्रनामा। सव प्रकार प्रभु पूरन कामा।।
दीनदयाल विरिदु सम्हारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।
तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। वान प्रताप प्रभुहि समुझाएउ।।
मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनिमोहि जियत नहि पावा।।
कहु कपि केहि विधि रारवौ प्राना। तुम्ह हूँ तात कहत अव जाना।।
तोहि देखि सीतल भइछाती। पुनि मोकहुँ सोइ दिन सोई राती।।

दो०-जनक सुतहि सुमझाइ करि, वहु विधि धीरजु दीन्ह।
चरनकमल सिरु नाइकपि, गवनु राम पइ कीन्ह।।२७।।

भाव-

जानकी जी को माथा नवाकर हाथ जोड़ पवनपुत्र बोले- माता! अव मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। तुरन्त सीता जी ने चूड़ामणि उतार कर दे दिया, जिसे खुश होकर हनुमान जी ने सिर झुकाकर ले लिया। जानकी जी वोली पुत्रवर! मेरी ओर से इस तरह प्रणाम निवेदन करना और कहना कि आप तो पूर्णकाम हैं। सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले है अपने दयालु भाव को सुरति करते हुये मेरे महान् संकट का मोचन कीजिये नाथ। इसके वाद हे तात!! इन्द्र के पुत्र जयन्त की कथा के वारे में उनके सामने चर्चा चला देना जिससे मेरे प्राणनाथ को पक्का विश्वास हो

जाये कि तुम मेरे पास होकर उनकी आज्ञा पालन कर तब वापिस हुये हो क्यों कि उस घटना की मेरे और उनके सिवाय और किसी को भी जानकारी नही है। उनके बाण का प्रताप याद दिला देना और यह कह देना कि रावण मुझे धमका चुका है कि एक माह में यदि मैंने उसकी बात नहीं मानी तो मुझे अपनी पैनी तलवार से मेरा सिर काटकर मुझे मार डालेगा। और फिर आने से भी क्या हासिल होगा। तब तो वे मुझे जीवित अवस्था में नहीं पायेंगे। तुम्ही बताओ पुत्र! किस भाँति प्राण बचाऊँ? तुम भी तो अब वापिस जाने को कह रहे हो। तुम्हे देखकर जी की जलन शान्त हुई थी अब फिर उसी प्रकार वही दुख:दायक दिन और भयदायक राते आनी है सो हे पुत्रवर! मेरा सन्देसा खूब समझाकर प्राणनाथ को सुना देना और जानकी के नेत्र एक बार फिर से भर आये।

हनुमान जी ने बार-बार समझाया। दिलासा दी। धीरज बंधाया। जल्दी से जल्दी आने का आश्वासन दिया। फिर सीता जी के चरणों में माथा टेक विभोर होकर चले-एक बार फिर घूम कर देखा-अश्रु प्रवाहित हुये और फिर वे असीम वेग से गन्तव्य की ओर उड़ चले। ॥ दो०सं० २७ तक॥

चौ०-चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी।।
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा।।
हरषें सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना।।
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि राम चन्द्र कर काजा।।
मिले सकल अति भये सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी।।
चले सकल रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा।।
तब मधुवन भीतर सब आये। अङ्गद सम्मत मधुफल खाये।।
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे।।

दो०-जाइ पुकारे ते सब, बन उजार जुवराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि, करि आये प्रभु काज॥२८॥

भाव-

राम नाम लेकर भयानक गर्जना करके पवनपुत्र ने प्रस्थान किया। वह ध्वनि इतनी कम्पन देने वाली थी कि अनेक गर्भवती निशिचरियों को गर्भस्राव हो गया और फिर एक बार भय व्याप्त हो गया। समुद्र के पार आकर अपने झुण्ड को खिलखिलाती हुई हँसी से लक्ष्य पूर्ति का सुखद संकेत दिया। उन्हे देखकर खुशी छा गई मानो नया जीवन पा गये हों। प्रसन्न मुख तथा तेज युक्त शरीर की आभा से यह समझने मे देर न लगी कि रामचन्द्र जी का काम पूरा कर आये हैं। सब हँसी खुशी उनसे मिले और वहां का हाल चाल कहते सुनते प्रभु के पास चले। मधुवन नाम के फलों के बाग में जाकर फल छक कर खायें। रखवारे मना करने लगे जिन्हें एक दो मुक्के लगाकर भगा दिया।

सीता कै अति विपति विसाला। विनहिं कहे भल दीन दयाला।।

दो०-निमिष निमिष करुना निधि, जाहिं कलप सम वीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ, भुज वल खल दल जीति।। ३१।।

भाव-

तो चलते समय हे कृपा निधान! हे दया सिन्धु!! उतार कर यह चूड़ामणि मुझे पहचान हेतु आपको देने हेतु सौंपी जिसे देखते ही लेकर प्रभु ने अन्तरस्तल से लगा लिया और नेत्रों में अश्रु भर आये। फिर हनुमान जी वोले-प्रभो! दोनो डवडवाये नेत्रों से कुछ सन्देसा कहलाया है कि लखन समेत प्रभु के चरण पकड़कर कहना कि हे स्वामी! आप तो दीन वन्धु, दीन दयालु, दीनानाथ हैं। प्रणत आर्ति, शरण में आये हुओं के दुःखों कष्टों को आप दूर करने वाले हैं। मैं क्या साक्षी देकर मन, वचन और कर्म से श्री चरणों में अपनी रति को सुरति कराऊँ? मैं यही सोंचा करती हूँ कि आखिर क्या अपराध मुझसे हो गया कि करुणा सिन्धु ने भुला दिया? सोते जागते मैं तो आपके पावन नाम में खोई रहती हूँ सो मुझे प्राणों के जाने न जाने की भी सुधि कहाँ रहती है। नेत्र हृदय के उत्ताप को निकालते रहते है। विरहाग्नि में मिट्टी की काया रुई वन चुकी है जिसे श्वाँस की वायु भी मिला करती है कि किसी भांति जल ही जाय, पर इन नयनों का क्या कहूँ? इन्हे आपके चरणों के दर्शन की लालसा जो ठहरी-जो निरन्तर उसी लालसा का प्रवाह किया करते हैं और आपके विछोह की अग्नि इस काया को नहीं जलाती। आपका विछोह भी मेरी परीक्षा ले रहा है। यह कहते पवन पुत्र हिचकी भरते हुये आगे कुछ न कह पाये-प्रभु भी भाव सिक्त हो गये-फिर ठहरकर हनुमन्त लाल बोले- हे प्रभो! मैं तो इन आँखों से देख चुका हूँ-जानकी जी का एक क्षण कल्पवत वीतता है। मैं तरु पल्लवों में छिपा यह दुःखद दृश्य देख चुका हूँ जव रावण वहाँ आया और भाँति-भाँति के प्रलोभन-भय दिखाकर कहने लगा कि एक मास पर्यन्त मेरी वातों पर अमल न किया तो पैनी तलवार से तेरा सिर धड़ से अलग कर दूंगा। हे नाथ! और मैं किस भांति कहूँ कि आप अति शीघ्र चलिये और अपनी भुजाओं के प्रताप से दुष्टों के दल का संहार कर माता जानकी को ले आइये विश्वेश्वर! ॥दो० सं० ३१ तक॥

चौ०-सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना! भरि आये जल राजिव नयना।।
वचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहँ वूझिअ विपति किताही।।
कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई। जव तव सुमिरन भजन न होई।।
केतिक वात प्रभु जातु धान की। रिपुहि जीति आनिवी जानकी।।
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहि कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ नसकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहि उरिन मै नाही। देखेउँ करि विचार मन माही।।

पुनि पुनि कपिहि चितव सुर त्राता। लोचन नीर पुलक अतिगाता।।
दो०-सुनि प्रभु वचन विलोकि मुख, गात हरषि हनुमन्त।
चरन परेउ प्रेभाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त ॥३२॥

भाव-

सीता का दुखड़ा सुनकर सुखागर श्री रामचन्द्र जी के नेत्रों में आँसू भर आये। सजल नयन नयनाभिराम राम वोले-मन, वचन और कर्म से जिसे मुझे छोड़ दूसरी गति न हो, दूसरा सहारा न हो, भला वताओ उसको स्वप्न में भी विपत्ति आ सकती है क्या?

यह सुनकर हनुमन्त ने कहा-"प्रभो! जव माता आपके नाम व ध्यान में मगन रहती हैं तव दुःख चिन्ता भला व्यापे भी तो कैसे किन्तु जव किसी कारण इसमें व्यवधान पड़ जाये-जैसे राक्षसी भाँति-भाँति से चीखकर-नये-नये डरावने रुप वनाकर आती थी-दशानन-मन्दोदरी आदि के आने पर किंचित ध्यान हट जाना तो सर्वथा स्वाभाविक ही था-दूसरे, हम सभी उनके यहाँ होने पर इतना चिन्तित तथा विचलित हैं, भला प्रभु कल्पना करें कि जो दस मास से जिस संत्रास, जिस मानसिक प्रताड़ना से दो चार हो रही हो-ऐसे में भला कौन विचलित नहीं होगा? और फिर, राक्षसों की चिन्ता क्यों कर हो? शत्रु को पराजित कर माता जानकी को लाने में देर न करें।-हनुमान जी की युक्ति पूर्ण एवं आत्म विश्वास से युक्त तर्क युक्त वातें सुनकर वहुत सुख व आनन्द प्राप्त किया और वोले पुत्र! तुम्हारे समान मेरा उपकार और भला कौन करेगा? सव सुख के साथी होते हैं। देवताओं को अपने स्वार्थ की पड़ी है, ऋषि मुनि भी अपने अपने अभिलषित उद्देश्य हेतु ही मुझे भेजते है। मै भली प्रकार यह सव जानता हूँ। तुम्हें इसका वदला किस प्रकार दूँ। मैं तो तुम्हे सामने पाता हूँ तो भीतर से संकोच से भर जाता हूँ और मेरा मन सामने आने में उपाट का अनुभव करता है। पुत्रवर! सुनों!! तुमसे तो मैं ऊऋण होने से रहा, यह मैं अच्छी तरह जान चुका हूँ और वे लगभग रोने ही लगे। आँखों से स्नेह निकलकर वह रहा है, शरीर में पुलक भरा है और आगे वे वोलना चाह रहे है-पर वोल नहीं पा रहे है-यह विचित्र स्थिति देखकर और भगवान के मृदुवचन सुनकर तथा अङ्ग अङ्ग पुलक भाव रस में डूवा देख अञ्जनी लाल चरणों में गिर पड़े और "त्राहि-त्राहि" अर्थात् रक्षा करो - रक्षा करो" यह शव्द कहते कहते प्रभु के चरण कमलों पर अश्रु विन्दु वोने लगे। धन्य अञ्जनी नन्दन! जै हो! जै हो!! जै हो!!! भला कौन त्रैलोक में तुम्हारी वरावरी कर सकता है? तुम्हारे समान वड़भागी हो भी तो कैसे? हाँ कपीश्वर!!!! ॥ दो०सं० ३२ तक॥

चौ०-वार वार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठव न भावा।।
प्रभुकर पंकज कपि के सीसा। सुमिर सोदसा मगन गौरीसा।।
सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुन्दर।।
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट वैठवा।।

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि विधि दहेउ दुर्ग अति वंका।।
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। वोला वचन विगत अभिमाना।।
साखा मृग कै वड़ि मनुसाई। साखा ते साखा पर जाई।।
नाघि सिन्धु हाटकपुर जारा। निसिचर गन वधि विपिन उजारा।।
सो सव तव प्रताप रघुराई! नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।
दो०-ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रताप वड़वानलहि, जारि सकइ खलु तूल।। ३३।।

भाव-

हनुमन्त के भाग्य को भला कैसे सराहें-स्वयं भगवान उन्हें अपने पैरों से उठाना चाहतें हैं। लेकिन वे प्रेम भाव में इतने मगन है कि उस भाव को छोड़ कुछ दूसरी अनूभूति का पता ही नहीं लगता। वड़ी देर तक रामचन्द्र जी का हाथ हनुमान जी के सिर को वड़े दुलार से सहलाता रहा-और वे अर्द्धनिद्रा जैसे, चरणों पर माथा लगाये उठने को सोंच तक नहीं रहे है- उस अनुपम अनिर्वचनीय, मनोरम, अलभ्य अवसर की सुरति कर-गौरी पति शिवजी मगन हो गये-भवानी जी को वह आगे की कथा सुनाना भी भूल गये-तन्मय हों भी क्यों न? यह तो उन्ही की खुद की सुखद अनुभूति थी- उन्होंने ही साक्षात् प्रभु के कर कमलों से अपना सिर सहलाते जाने की परम आनन्ददायक स्थिति को आत्मसात् किया था-कपि रूप में अवतरित होकर राम जी को सदैव सहायता का आश्वासन जो दे रखा था- किंवा यह तो उन्ही की लीला थी कि प्रभु इस बात को भूल जायें और सेवा कराते ही रहें, सहायता लेते रहें, आज्ञा देते रहें। यह दो महा शक्तिमानों के अद्भुत मिलन के क्षण थे। स्वामी के कार्य पर सेवक को जो आत्मतोष होता है, उस सेवा भाव को मेवा भाव में आत्मसिक्त कर रहें थे। शिव जी। धन्य हैं प्रभो! आप अनादि हैं! अनन्त हैं। आप सभी जगह हैं। सव रूपों में हैं। आपकी जै हो नाथ!!

इधर भवानी जी कुछ देर तक शिव जी को मुखर न देख आगे की कथा सुनने को व्यग्र -थीं- शिव जी ने तुरन्त ही अपने मन को पुनः एकाग्र किया-सावधान मन शिव जी आगे की कथा फिर सुनाने लगे जो वहुत ही सुन्दर लुभावनी, मनभावन तथा परम पावनी थी।

प्रभु ने पवन पुत्र को उठाया। हृदय से लगाया। अभी तक उनके चरण हनुमान जी के नयनाश्रु भिगो रहे थे, अव सजल नयन राम ने उनका हाथ अपने हाथ में लिया और विलकुल समीप एक रूप जैसी स्थिति में वैठा लिया और पूंछा- हनुमन्त! लाल!! यह तो वताओ कि रावण जैसे परमसुभट अन्य रक्षकों सहित जिसकी रक्षाकर रहे थे उसे अभेद्य किले को कैसे जला पाये? अहङ्कार रहित रहना ही शिव तत्व का सार है सो अभिमान शून्य होकर वोले- "इसमे मेरी कोई वहादुरी नहीं है। मुझसे तो यही हो पाता कि इस डाल से उस डाल पर कूद

फाँद करता-फल खाता-तोड़कर फेंकता-शाखाओं पर इधर उधर जाकर तोड़-ताड़ कर उजाड़ करता और जो मैं समुद्र लाँघ पाया-सोने की लंका को जला डाला-जब कि सोना तो हे अखिलेश्वर! जलने से और भी चमक पाता है-यह तो सब आपका ही प्रताप था कि यह हो पाया-राक्षसों को मार अशोक वाटिका को उजाड़ डाला, इसमें मेरा कुछ नहीं है-जो कुछ है सो तोर! ना कछु लागे मोर!!

क्योंकि यह तो मुझे मालूम ही है कि आपका प्रताप ही जो काल को भी खा सकता है। छोटा साँप गरुड़ को खा सकता है, मुझे लंकिन नाम की दैत्या ने भी यही समझाकर मुझसे कहा था कि हृदय में कौशलपुर के राजा राम को हृदय में रखकर लंका में घुस जाओ। मुझे जब जिज्ञासावश अपनी ओर देखते हुये देखा तो फिर हिम्मत बँधाई और आपके प्रताप की महिमा में विश्वास जगाया जब उसने कहा कि जब राम जी अनुकूल होंगे-फिर यह तो उन्ही के निमित्त सब हो रहा है-तो धूल के कण की भाँति सुमेरु पर्वत हो जायेगा बस राम जी कृपा-दृष्टि से-कृपा भरी चितवन से एकबार देख लें- और प्रभु तो अपने हृदय से लगाकर मेरे हृदय मे ही आ बैठते हैं फिर रुई अग्नि को जलाकर उसे पुनः क्षार ही क्यो न कर सकेगी। हे नाथ! आप सब कुछ जान समझकर अनजाने बनते है। राम चुपचाप सुने जा रहे थे। धन्य है दो महिमानों की महिमा!! ॥दो॰ सं॰ ३३ तक॥

चौ॰-नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी।।
सुनिप्रभु परम सरल कपिवानी। एवमस्तु तव कहुउँ भवानी।।
उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना।।
यह सम्वाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा।।
सुनि प्रभु वचन कहहिं कपि वृन्दा। जय जय जय कृपाल सुख कन्दा।।
तव रघुपति कपिपतिहिं बोलवा। कहा चलैं कर करहु बनावा
अव विलम्बु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे।
कौतुक देखि सुमन बहुवरषी। नभ ते भवन चले सुरहरषी।।

दो॰-कपिपति बेगि बोलाये, आये जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल, वानर भालु बरुथ।।३४।।

भाव-

शिवावतार हनुमन्त कहते रहे-हे प्रभो! इसी भाँति कृपा दृष्टि बनाये रखिये जिससे सुख की मूल आपके चरणों में प्रीति युक्त भक्ति स्थिर बनी रहे। आप निष्काम होकर भी सकाम है अतः सकाम स्वरुप सिद्ध करने के लिये मेरी इसी कामना को पूरी करिये कि आपकी अचल भक्ति मुझसे कभी विरत न हो। सरलतम हृदय से निकली कपीश्वर की अप्रतिमवाणी सुनकर दया निधान ने "एव मस्तु" (ऐसा ही हो) कहा।

शिव जी कहते है- हे उमेश्वरि! राम के स्वभाव को जो समझ पाया उसे उनके भजन के अलावा कभी कुछ नही सुहाता। यह "राम और रामदूत का सम्वाद" (परोक्षतः राम और शिव का सम्वाद किम्वा राम कथा रूपी प्रसाद) जिसके ह्रदय में रम गया, समझ लो प्रभु की निश्चल (अनपायनी) भक्ति उसे मिल गई।

रामचन्द्र जी के 'एवमस्तु' वचन सुनते ही दयालु, कृपालु, रामचन्द्र जी की जै हो! जै हो!! जै हो!!! यह कहकर वानर-रीछों के समूह से गगन भेदी उद्घोष गुंजायमान हो गया। कपि समूह को पूर्णतः तैयार जान तुरन्त ही रघुनायक राम ने सुग्रीव को बुलाया और कहा अब प्रयाण की तैयारी करो। अब जितनी जल्दी हो सके सभी वानरों को यह निर्देश देकर रवाना कर दो परम कौतुकी परर कृपालु राम के इन वचनों के निकलते ही देवगण खूब फूल वरसाकर अपने अपने निवासों को चल दिये।

विना देरी किये सुग्रीव ने राम के कहे अनुसार कपियों को एकत्र किया। कपि सेनानी झुण्ड के झुण्ड आते गये। विभिन्न वर्णों के रीछों-वानरों का वल भी असीमित है। वे आज्ञा एवं निर्देश हेतु विनत भाव से रामचन्द्र जी की ओर निहार रहे थे।। दो०सं०३४ तक।।

चौ०-प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा।।
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना।।
राम कृपा वल पाइ कपिन्दा। भये पच्छ जुत मनहु गिरिन्दा।।
हरषि राम तव कीन्ह पयाना। सगुन भये सुन्दर सुभ नाना।।
जासु सकल मङ्गलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती।।
प्रभु पयान जाना वैदेही। फरकि याम अंग जनुकहि देही।।
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई।।
चला कटकु को वरनै पारा। गर्जहि वानर भालु अपारा।।
नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी।।
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं।।

छन्द :- चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सम गन्धर्व सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे।।
कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसल नाथ गुन गन गावहीं।।
सहि सक न भार उदार अहिपति वार वारहि मोहही।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहही।।
रघुवीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सोलिखित अविचल पावनी।।

दो०-एहि विधि जाइ कृपा निधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु विपुल कपिवीर।।३५।।

भाव-

सभी कपि-भालु विनय युक्त होकर प्रभु को शीश झुकाकर चरण वन्दन कर रहें हैं असीम महाबली वे भयंकर गर्जन तर्जन कर उत्साह से भरपूर हैं। यह दृश्य देख भगवान् राम ने अपनी कृपा दृष्टि सभी पर घुमाई और कृपा का संवल पाकर जैसे उनमें उड़ने की शक्ति आ गई हो। पर्वत तुल्य विशाल शरीर वाले उत्साह से भरपूर विशाल कपि सेना सहित रामचन्द्र भगवान् ने प्रयाण किया। अच्छे शकुन होने लगे। क्यो न हो? जिनकी कीर्ति मंगलमय है, शुभ शकुन होना तो एक दिखावा मात्र है। यही नहीं अशोक-वाटिका में चिन्तातुर जानकी जी को भी वाम अंगो के स्फुरण से यह पूर्वाभास हो गया कि अब स्वामी आ ही रहे हैं। उधर रावण को ठीक इससे उल्टे भाँति-भाँति के अपशकुन होने लगे।

वानरों-भालुओं की चल रही सेना मानों अन्तहीन है। अनन्त प्रभु की सेना क्यों न अनन्त हो? वे गर्जते क्रमवार वढ़ रहे है। उनके बढ़े हुये नख ही शस्त्र हैं। पर्वत-खण्ड लिये कोई कोई वृक्षों की शाखायें लिये कोई पैदल ही, कोई आकाश मार्ग से, बढ़े जा रहे हैं। शेरों की मानिन्द दहाड़ रहें हैं। दिग्गज चिंघाड़ रहें हैं।

धरती हिल रही है, दिग्गज फिर चिंघाड़ उठे, पर्वत मानों हिल रहे हों, समुद्र में जैसे उफान आ गया है, यह अनुभव कर देव-गन्धर्व-मुनि-नाग-किन्नर अत्यन्त सन्तुष्ट हुये। वे सभी महा प्रतापवान्, रामचन्द्र भगवान् की जै, शक्तिमान महिमान की जै-जै कहकर अपने अपने आत्म सुख को प्रकट करने लगे।

शेषनाग उस अपार भार को न सह पाने का अभिनय कर भगवान राम की महिमा को मानों स्वीकार रहे हों, यह बताने हेतु जैसे अपने दाँतों से कछुये की वज्रयुत कठोर पीठिका को पकड़ रहें हैं। और यह करते हुये भगवान् कृपा निधान की यशोगाथा कूर्म पृष्ठ पर (कछुये की पीठ पर) अपने दाँतों से मानो अंकित (खोद रहे) कर रहें हों।

यह दृश्य दया सिन्धु, कृपा सागर, सुखागर भगवान रामचन्द्र जी के सेना सहित समुद्र तट पर उतरने का था और उतरते ही बलशाली वानर-भालु वाग-वगीचों में फल खाने गिराने लगे जैसे अपने उत्साह को दिखलाकर राम जी के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन कर रहे हों।। दो०सं०३५ तक।।

चौ०-उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब ते जारि गयउ कपि लंका।।
निज निज गृहँ सब करहिं विचारा। नहि निसिचर कुल केर उबारा।।
जासु दूतवल वरनि न जाई। तेहिं आयें पुर कवन भलाई।।
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन वानी। मन्दोदरी अधिक अकुलानी।।
रहसि जोरि कर पतिपग लागी। बोली वचन नीति रस पागी।।

कन्त करप हरि सन परिहरहू। मोर कहा अतिहित हियँ धरहू।।
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर धरनी।।
तासु नारि निज सचिव वोलाई। पठवहु कन्त जो चहहु भलाई।।
तव कुल कमल विपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई।।
सुनहु नाथ सीता विनु दीन्हे। हित न तुम्हार सम्भु अज कीन्हें।।
दो०-राम वान अहिगन सरिस, निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तव लगि, जतुन करहु तजि टेक।।३६।।

भाव-

उधर जव से वजरंगी लंकापुरी जलाकर गये हैं, तव से वहाँ भय समाया हुआ है। जो जहाँ हैं, यही सोंचा करते है कि अव लगता है कि निशिचर वंश का कल्याण नहीं है। जिसका एक दूत ही यह भयावना कृत्य कर गया, जव वह खुद आयेगा तव भला लंकापुरी की क्या दुर्गति होगी? रावण की गुप्तचर दूतियों ने अन्तःपुर जाकर मन्दोदरी को इस वात का खुलासा किया जिसे सुनते ही वह इतनी शोकाकुल और चिन्तातुर हुई कि फौरन पति के पैरों में गिरकर हाथ जोड़कर सीख भरी एवं नीतिकर सलाह देने लगी-नाथ! क्या पावोगे राम से लड़ाई मोल लेकर? कि जिसके दूत बन्दर की डरावनी करनी को याद कर आज भी लोग काँप जाते है, गर्भवती निसिचरियों के गर्भ स्रवित होने लगते है। ओ स्वामी!! अपने सचिव को बुलाओं और उनकी पत्नी सीता को सचिव के साथ उन तक पहुँचा दो तो भले ही विगड़ी बात एक बार फिर से बन जाय, वरना सीता उस शीत निशा की भाँति आई है, जिसके तुषार पात से (उसकी आँखों से गिरे आँसू मानो तुषार-वूँद वनकर) आपके कुल कमल के समूह से गलकर गिर जायेंगे अर्थात् आपके निशिचर कुल का विध्वंस अव हुआ ही जानिये। और स्वामी!! सीता को बिना वापिस किये शंकर जी और ब्रह्मा जी भी आपकी रक्षा नहीं करेंगे। वे भला क्यों अत्याचार-अनाचार का पक्ष लेने लगे?

और हे स्वामी! आपके कहने को ही वीर, वे निसाचर मेढक तुल्य हैं, वे भला राम के सर्पवत वाणों से कैसे वच सकेंगे। जव तक वह घड़ी आन पहुँचें, तभी तक नाथ!! मेरे कहे पर अमल कर लीजिये तो हम सभी का अनिष्ट निवारण भले ही हो जाये वरना हे नाथ..... ।। दो० सं० ३६ तक।।

चौ०-श्रवन सुनी सठताकरि वानी। विहँसा जगत विदित अभिमानी।।
समय सुभाउ नारिकर साचा। मंगल महुँ भय मन अतिकाचा।।
जौ आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं विचारे निसिचर खाई।।
कम्पहिं लोकप जाकी त्रासा। तासुनारि सभीत बड़ि हासा।।
अस कहि विहसि ताहि उरलाई। चलेउ सभा ममता अधिकाई।।
मन्दोदरी हृदय कर चिन्ता। भयउ कन्त पर विधि विपरीता।।
बैठेउ सभाँ खवरि असि पाई। सिन्धु पार सेना सब आई।।

बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू।।

जितेहु चराचर तव श्रम नाहीं। नर वानर केहि लेखे माहीं।।

दो०-सचिव वैद गुर तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।

राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगही नास।। ३७।।

भाव-

रावण सब सुन रहा था। हँसा। वह क्या जग प्रसिद्ध उसका अभिमान हँसकर बोला- सच में स्त्रियाँ बड़ी डरपोंक स्वभाव वाली होती हैं। अच्छी बातों के लक्षण जानकर भी तुम्हे उल्टा ही लगता है। तुम्हारा मन तो बड़ा ही कमजोर है। यदि गुप्तचरियों की यह बात मान भी ली जाय कि शत्रु सेना सिन्धु पार आ टिकी है और यहाँ भी आ जायेगी सो भी इसमें डर किस बात का? बेचारे निशिचरों के भोजन का जुगाड़ हो जायेगा। दिग्पाल भी तुम्हारे पति का नाम सुन काँपा करते है और उसकी पत्नी तुम इतनी डरी हुई क्यों कर हो? बड़ी हास्यास्पद बात है। और हँसते हुये अपने हृदय समीप लाते हुये प्रेम दर्शाया। दिलासा दिया। फिर सभा को उठकर चला गया।

मन्दोदरी पतिव्रता थी। उसका दुर्भाग्य था कि उसका पति अंहकार से ग्रसित उससे उबर नहीं पा रहा था जिसके कारण उसकी भक्ति, उसका ज्ञान, चिन्तन शक्ति सभी कुछ लुप्त हो चुके थे। यह शिव ही की लीला थी। यदि अंहकार की पर्त हट जाती-फिर तो वह अनाचार करता ही नहीं और न ही ऋषि मुनियों को त्रास पहुँचाता लेकिन जब दुर्बुद्धि हावी हो गई, अंहकार का लेप चढ़ गया फिर तो होनी होकर ही रहेगी।

जैसे ही दरबार में गया- उसके अन्य गुप्तचर भी वही खबर लाये जो गुप्तचरियों ने मन्दोदरी को बताई थी समुद्र के उस पार शत्रु सेना देखी गई है। उसने मंत्रियों से उचित सलाह मांगी। वे सब चापलूसी की इन्तिहा कर बोले- अरे महाराज! चुप भी रहें!! हँसते हुये बोले- यह क्या कह रहें हैं? यदि ऐसा हो तो भी डर काहे का? बिना परिश्रम के सारे चराचर को जीत लिया और जब यह दो लोग वन्दरों को लेकर आये हैं तब आप शंका करते हैं। आप निश्चित बैठिये महाराज-आपके सुभट उन्हें बीन-बीन कर खा जायेंगे और वे लड़के स्वयं ही डरकर भाग खड़े होंगे।

सचिव-वैद्य और गुरु यदि ये तीन डर के कारण या लालच में आकर लुभावनी-सुहावनी बाते करने लगे तो सचिव राज्य का नाश कराता है, वैद्य शरीर का और गुरु धर्माचरण से हीन कर डालता है-वही स्थिति यहाँ आन पहुँची हैं।

(लंकापुरी जलने के बाद जो विनाश वहाँ हुआ था?-उसकी पुष्टि रावण की इस उक्ति से होती है- उससे अकाल जैसी हालत बनने लगी थी क्यों कि "जिअहिं बिचारे निसिचर खाई" कहकर रावण ने स्वयं उसका संकेत दे दिया था। ।। दो० सं० ३७ तक।।

चौ०-सोइ रावन कहुं बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई।।

अवसर जानि विभीषनु आवा। भ्राता चरन सीस तेहि नावा।।

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन।।
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता।।
जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चन्द कि नाईं।।
चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्ठइ नहि सोई।।
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ।।
दो०-काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पन्त।
सब परिहरि रघुवीरहि, भजहु भजहिं जेहिं सन्त।।३८।।

भाव-

वही चाटुकारिता रावण के दरबार में की जा रही है। स्वार्थी सभासद अपना अपना मतलब गाँठने के लिये बस अच्छी लगने वाली बाते कह रहे हैं (एक तरफ अंहकार और दम्भ है- तो दूसरी तरफ (दरबारियों में) स्वार्थ सिद्धि की चालें चली जा रही हैं- जो रावण के मन को और प्रसन्न कर अंहकार के लेप को मोटा कर रही हैं)। तभी किसी के द्वारा यह जानकर कि सभा चल रही है और ऐसी स्थिति आई है जिस पर सलाह मशविरा हो रहा है- ठीक अवसर पर विभीषन ने आकर बड़े भाई रावण के पैरों में शीश झुकाकर प्रणाम किया। और बैठने का संकेत पाकर एक बार फिर शिर झुकाकर विनीत भाव दिखाते हुये बैठ गये। जब रावण ने उनसे भी अपने विचार बताने की आज्ञा दिया तो वे बोले- "हे बन्धुवर! यदि आपने हमसे कुछ सुनने की कृपा की है तो हे तात!! मैं अपनी बुद्धि के अनुरूप ही जिससे सबकी भलाई हो सके-वही बात कहना चाह रहा हूँ। आप सुनने की कृपा करें तात!!!"

यदि आप हम सभी की भलाई, सुयश, सद्गति एवं सद्बुद्धि कारक परिणाम वाले एवं भाँति-भाँति के सुख पहुँचाने वाली सलाह पूँछते है तो हे तात! पराई स्त्री को चौथ के चन्द्रमा की चन्द्रमा की भाँति त्याग कर वापिस भिजवा दीजिये। इससे आपका कलंक धुल जायेगा। वैसे भी, कूट नीति से भी देखें तो-चौदह भुवनों का भले ही स्वामी हो, लेकिन सामान्य प्राणी के द्रोह से उसका टिकना असम्भव हो जाता है। मनुष्य कितना भी गुणी व चतुर हो किन्तु यदि उसमें लालच करने का मामूली अवगुण व्याप्त हो जाय तो उसे अच्छा नहीं कहा जाता। सभी यह पहले कहेंगे कि वह तो बड़ा लोभी है। फिर पराई स्त्री के न वापिस करने से काम भाव बढ़ेगा-क्रोध भी उससे उपजेगा, यदि उसमें अंहकार और लोभ और मिल गया तब तो नरक की खाई में ढकेल कर ही रहेंगे। जब कि सीता को वापिस कर, विनम्र भाव रखकर, शान्त चित्त, लोभ रहित होकर इन दोषों को आप स्वयं ढकेलकर दूर कर सकते हैं-सभी को कल्याण कारक होगा और उन्ही सन्त सेवित प्रभु के चरणों में भक्तिभाव से लगकर कल्याण ही कल्याण की हम सभी को भीख दीजिये तात!! और भी सुने महराज!!! क्योकि- ॥ दोहा सं० ३८ तक॥

चौ०-तात राम नहि नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु करकाला।।

ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता। व्यापक अजित अनादि अनन्ता।।
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिन्धु मानुष तनुधारी।।
जन रंजन भंजन खल त्राता। वेदधर्म रच्छक सुनु भ्राता।।
ताहि बयरू तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा।।
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदे ही। भजउ राम बिनु हेतु सनेही।।
सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा।।
जासु नाम त्रयताप नसावन। सोइ प्रभु प्रकट समुझ जियँ रावन।।
दो०-बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दस सीस।।
परिहरि मान मोहमद, भजहु कौसला धीस।।३९ (क)।।
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन, कहि पठई यहबात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसरू तात।।३९ (ख)।।

भाव-

महाज्ञानी होकर भी अंहकार और मोह में भूल रहे हैं। हे तात! राम साधारण राजा एवं मनुष्य ही नहीं हैं। वे चौदहों भुवनों के अधिपति, काल के भी काल, परब्रह्म, नीरोग, अजन्मा, अनन्त, विभवेश्वर रोम रोम में वास करने वाले है उनका उद्भव किसे पता है? उन्हें भला कौन समर करके जीत सकता है। उनका स्वभाव ही है कि वै गौ, ब्राह्मण, पृथ्वी पर वास करने वालों तथा देवों की रक्षा एवं हित करने वाले है। यह प्रकृति वश वे करते हैं किसी की प्रार्थना वश नहीं। भक्तों के, शरणागतों के तो परम हितैषी हैं। दैत्य निकन्दन हैं। वेद तत्वों से युक्त व धर्म संयुक्त हैं। हे तात! इसी कारण वे वेद-धर्मादि के रक्षक विख्यात हैं।

उनसे भला वैर किस काम का और क्यो? सर्वभाव समभाव एवं सद्भाव ही उनमें समाये हुये तत्व है। प्रणतार्तिहर रघुनाथ को सीता जी को सौंपकर अपने ऊपर के पापवत बोझ को हल्का कर लीजिये। वे तो अकारण ही दयार्द्र होने वाले है। बहुत शीघ्र द्रवित होंगे। समग्र विश्व से द्रोहरत होकर भी उनकी शरण में जायं तो वे शरणागत की रक्षा करते व प्यार देते हैं। उनका नाम ही भवताप शामक है। हे भाई रावण! तुमसे तो यह सब छिपा नहीं होना चाहिये। क्या इतना अंहकार लद चुका है कि पूर्व के ज्ञान को भी विसारे दे रहे हो? अरे सोंचो तो वे ही विश्वेश प्रभु सगुण रूप में प्रकट हुये हैं इस बात को मन में तो समझों। मैं तो बार-बार यही प्रार्थना करूंगा कि झूठी प्रतिष्ठा, मोह एवं अंहकार की अंधेरी गुफा से बाहर निकलों और प्रभु के प्रकाश से प्रकाशित होकर अवगुणों का लोप कर दो और उन्ही शरणागत वत्सल अनन्त कृपानिधि का किसी विधि से नाम जपो। यही सब कुछ समय पूर्व अपने पितामह श्री महामुनि पुलस्त्य ने अपने एक शिष्य के माध्यम से मेरे पास कहलवाया था, सो आज उचित अवसर जान, आपकी आज्ञा पाकर बिना देर किये सब कुछ बता दिया। अब मानने न मानने की मर्जी तो आपकी है। ॥ दो०सं० ३९ क और ख तक ॥

चौ०-माल्यवन्त अति सचिव सयाना। तासु वचन सुनि अति सुख माना।।
तात अनुज तव नीति विभूषन। सो उर धरहु जो कहत विभीषन।।
रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहां इह कोऊ।।
माल्यवन्त गृह गयउ बहोरी। कहइ विभीषन पुनि कर जोरी।।
सुमति कुमति सबके उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।
जहाँ सुमति तहँ सम्मति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।।
तव उर कुमति वसी विपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता।।
काल राति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।।

दो०-तात चरन गहि माँगउँ, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहँ, अहित न होइ तुम्हार।।४०।।

भाव-

अन्य सचिव मुँह पर तारीफ के पुल बाँधा करते थे किन्तु एक सचिव जिसका नाम माल्यवन्त था वह नीति निपुण था। विभीषण की बातें सुनकर वह हर्षित हुआ और बोला हे स्वामी! आपका अनुज अत्यन्त नीतिज्ञ है उसकी बाते सुनकर हृदय में बिठाइये क्यों कि नीति पर चलकर ही राजा की ख्याति बढ़ती है।

यह सुनते ही रावण आगबबूला हो उठा। बोला-अच्छा तुम दोनों ही मिले हुये लगते हो। शत्रु की प्रशंसा व वैभव का बखान कर रहे हो। अन्य सचिवों को इन दोनों की बाते नहीं सुहाती थी सो वे वहाँ से हट लिये थे-उन्हे पुकारते हुये रावण बोला-ओ कोई है! इनको निकालो दरबार से!! माल्यवन्त समझ गया कि अब इस दुष्ट के दुर्दिन है तभी कल्याण की बाते भी अप्रिय लग रही है अतः वह तो यहाँ से स्वयं ही चला गया। विभीषण को अब भी विश्वास था कि शायद एकाधबार फिर कहकर देख लूँ - शायद कुछ पल्ले ही पड़ जाये। सो फिर से हाथ जोड़ विभीषण कहने लगे-है तात! वेद पुराणों में यह कहा गया है कि बुद्धि के दोनो पक्ष सबके हृदय स्थल में रहते हैं। अच्छाई वाला पक्ष जिस को भा जाता है, उसको कल्याण ही कल्याण होता है और अंधेरा पक्ष यानी कुबुद्धि वाला भाव जिसमें पैठ बना गया, वहाँ तो बस विपदा ही विपदा को रहना है तभी आपको अच्छी बातें खराब लगती हैं। चाटुकारों की ठकुर सुहाती से आप बड़े प्रसन्न हो जातेहै और योग्य एवं समझदार माल्यवन्त जैसे सचिव की सलाह आपको कड़वी लगती है, जिसे लगने में ही आपकी भलाई है, उस सीता को आप त्यागने से गुरेज कर रहे है, उस पर आप का दुर्भाग्य रूपी मोह बढ़ता जा रहा है।

हे भाई! मै पैर पड़ता हूँ!! बड़े होने के नाते आप प्यार एवं वात्सल्य भाव से ही सही-मेरी बातों पर अमल कीजिये। हित नहीं भी होगा तो भी अहित तो निश्चित ही नही होगा और आप मिथ्या दम्भ अंहकार से मुक्त होकर सद्बुद्धि युक्त हो जायेंगे इसी में आपकी-हम सभी की, नगरवासियों की भलाई है तात!! ॥दो० सं० ४० तक॥

चौ०-बुध पुरान श्रुति सम्मत बानी। कही विभीषन नीति बखानी।।
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।।
जिअति सदा सठ मोर जियावा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा।।
कहसि न खल अस को जग माही। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं।।
ममपुर बसि तपसिन परप्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहुनीती।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।
उमा सन्त कइ इहइ बड़ाई। मन्द करत जो करइ भलाई।।
सचिव संग लै नभपथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ।

दो०-रामु सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुवीर सरन अब जाँउ देहु जनि खोरि।।४१।।

भाव-

यद्यपि विभीषन ने वेद, पुराण और बुधजन सम्मत सलाह दी थी, विभीषन की सलाह कूटनीतिक दृष्टि से भी उचित थी फिर भी रावण अत्यधिक क्रुद्ध हो गया और उठते हुये बोला- अरे शठ! धूर्त!! तेरी मृत्यु अब निकट है। मूर्ख!!! मेरे दिये गये अन्नजल पर पलता है, तिस पर भी तुझे शत्रु का पक्ष लेना रूचता है। अरे दुष्ट! क्यों नहीं बोलता कि संसार में कौन बचा है जिसे मैने अपनी भुजाओं के बल से नही जीत लिया। मेरे नगर में रहकर भी तपसियों से इतना लगाव है तो जा उन्ही से मिल ले जाकर- उन्ही को राजनीति-कूटनीति एवं धर्मनीति का पाठ पढ़ा जाकर। और इस तरह अपशब्द कहते हुये लात चलाई लेकिन विभीषण पैर पकड़कर समझाता और चिरौरी करता रहा।

शिव जी कहते हैं- "उमा! यह तो सन्तों का बड़प्पन ही है कि बुराई के बदले भी भलाई ही किया करते हैं तभी तो इतना अन्याय-संत्रास झेलते हुये एक बार फिर बोला हे तात! आप मुझसे बड़े हैं। पिता तुल्य हैं। मुझे मारने से कोई भी अपमान नहीं अनुभव हुआ। लेकिन अन्ततोगत्वां फिर यही कहता हूँ कि उन्ही जनेश्वर राम जी के भजन में रत रहकर ही आपकी भलाई सम्भव है। मेरा क्या? मैं तो अब अपने सचिव के साथ आपकी सभा को, आपके अनीतिकर राज्य को तिजाञ्जलि देकर जा रहा हूँ। और शीघ्रता से आकाशमार्ग से यह कहते हुये चला-

यदि तुमने तिरस्कृत कर हमें राम के पक्ष में जाकर उन्ही को नीतियाँ बताने की चुनौती देकर दरबार से निकाला है तो मैं उन्ही दृढ़प्रतिज्ञ, सत्यसंध प्रभु राम के चरणों की शरण में जा रहा हूँ-अब मुझे दोष मत देना-अब तुम्हारी सचिव-मण्डली स्वतः काल का ग्रास बनने वाली है॥ दो०सं० ४१ तक॥

चौ०-अस कहि चला विभीषनु जब ही। आयूहीन भये सब तब ही।।
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कै हानी।।
रावन जबहि विभीषन त्यागा। भयउ विभव बिनु तबहि अभागा।।

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहुमन माहीं।।
देखिहउँ जाइ चरन जल जाता। अरुन मृदुल सेवक सुख दाता।।
जे पद परसि तरी रिषि नारी। दण्डक कानन पावन कारी।।
जे पद जनक सुताँ उर लाये। कपट कुरंग संग धर धाये।
हर उर सर सरोज पद जेई। अहो भाग्य मैं देखिहुउँ तेई।।
दो०- जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मनु लाइ।
ते पद आजु विलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।४२।।

भाव-

नभ पथ में जाते हुये उक्त बाते कहते हुये जैसे ही विभीषण चला- वैसे ही लंकावासी आयुहीन हो गये। शिव जी कहते है- भवानी! सुनो!! साधु स्वभाव के लोगों द्वारा हितार्थ कही बातों को भी जो अन्यथा लेते हुये उनकी अवहेलना, अवज्ञा या अनादर करता है उसके सभी शुभ कर्म-शुभ फल- विनष्ट हो जाते हैं। जिस समय रावण ने विभीषण को लात मारकर दरबार से निकल जाने को कहा-उसी क्षण वह विभवहीन हो गया-उसका भाग्य विपरीत हो गया। उधर, विभीषण अपमानित होकर भी संयमशील बना रहा, प्रसन्नमन अनेक श्रेष्ठ संकल्पनाओं के सागर में डूबता उतराता-आनन्दित होता-अपने सर्वस्व-रघुकुल भूषण राम के चरणों में शरण हेतु चल दिया। और यह सोंचता हुआ गया कि मै उन्ही चरण कमलों का पराग-रज अपने माथे लगाने का सौभाग्य प्राप्त करूंगा जिनका स्पर्श पाकर अहिल्या तर गई। जिन चरणों से दण्डक वन पवित्र हुआ है, धन्य हैं वे चरण जिन्हें जानकी जी हृदय में धारण करती हैं, धन्य है वे चरण जिन्होंने कपट मृग के पीछे भागकर उसको भी कृतकृत्य कर दिया और वे ही शिव जी के हृदय सरोवर में कमल की भाँति सुशोभित रहते हैं और शिव जी का हृदय इन चरणों के पराग का पान करता है और-

चरणों की पादुकाओं में भरत जी का मन रमा रहता है, जिनके आश्रय से समग्र त्रैलोक थमा रहता रहता है, मेरा अहो भाग्य! मै इन नेत्रों से उन्हीं श्री चरणों का दर्शन कर अपने भाग्य को सराहूँगा॥ दो० सं० ४२ तक ॥

चौ०-एहि विधि करत सप्रेम विचारा। आयउ सपदि सिन्धु एहि पारा।।
कपिन्ह विभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत विसेषा।।
ताहि राखि कपीस पहिं आये। समाचर सब ताहि सुनाये।।
कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहइ कपीस सुनउ नर नाहा।।
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया।।
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा।।
सखा नीति तुम्ह नीकि विचारी। मम पन सरनागत भयहारी।।
सुनु प्रभु वचन हरष हनुमाना। सरनागत वच्छल भगवाना।।

दो०-सरनागत कहुँ जे तजहि, निज अनहित अनुमानि।।
तेनर पांवर पाप मय, तिन्हहि विलोकत हानि।।४३।।

भाव-

मन में भावनाओं का प्यार, प्रभु कृपावलम्व की परिकल्पना के अकथनीय आनन्द में मगन विभीषण सोंचतें विचारते चले आ रहे थे और वहुत ही शीघ्र इस पार आ पहुंचे। वानर चौकस थे। देखकर अनुमान किया कि शत्रु का कोई गुप्तचर तो नहीं है? यह सोंचकर विभीषण को वहीं रोककर सुग्रीव को सूचित किया। फिर सुग्रीव राम जी के पास पहुँचकर वोले- भगवन! रावण का भाई मिलने आया है। रामचन्द्र जी ने सुग्रीव की राय पूंछी तो सुग्रीव ने कहा-प्रभो! सुनों!! निशाचर का भेद जानना कठिन है कही ऐसा न हो हमारा भेद लेने आया हो अतः मेरी समझ में पकड़कर बांधे रखना ही ठीक लगता है। रामचन्द्र जी वोले-"मित्र तुमने राजनीतिक सलाह तो ठीक दिया है किन्तु मैं तो प्राण-प्रण से शरण में आये हुये की रक्षा करता हूँ यह मैने दृढ़प्रतिज्ञ होकर कहा है और यही हमारा सदैव के लिये निश्चय है"

प्रभु के वचन सुनकर हनुमान जी को वहुत हर्ष हुआ कि भगवान शरणागत को कितने दुलार से त्राण देते हैं।

रामचन्द्र जी ने सुग्रीव आदि को इस शरणागत-वत्सलता का महत्व वताते हुये समझाया- "मित्र! यद्यपि तात्कालिक लाभ इसे वाँधकर रखने में ही था किन्तु अपने हित को आगे कर जो शरणागत को शरण नहीं देते, त्राण नहीं करते, उनका यह करना तुच्छता का द्योतक है और उनके मन में स्वार्थ वश पाप समा जाता है, अतः उनके सम्पर्क में आने वाले, देखने वाले को भी पाप का भागी वनना पड़ता है। ॥ दो० सं० ४३ तक ॥

चौ०-कोटि विप्र वध लागहिं जाहू। आयें सरन तजउँ नाहि ताहू।।
सम्मुख होइ जीव मोहि जवही। जन्म कोटि अघ नासहिं तवहीं।।
पापवन्त कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ।।
जो पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई।।
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।
भेद लेन पठवा दससीसा। तवहुँ न कुछ भय हानि कपीसा।।
जग भहुँ सखा निसाचर जेते। लक्षिमनु हनइ निमिष महुँ तेते।।
जौ सभीत आवा सर नाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाई।।

दो०-उभय भाँति तेहि आनहु, हँस कह कृपा निकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद हनू समेत।।४४।।

भाव-

यही नहीं- जो करोड़ो ब्रह्म हत्याओं का दोषी हो, ऐसा व्यक्ति भी अंहकार

और पाप का प्रायश्चित कर मेरी शरण में आ जाता है। तो मैं उसे भी नहीं दुतकारता क्यों कि अंहकार और पाप की उनकी अनुभूति-स्वीकारोक्ति ही उसे पाप हीन बना देती है फिर मेरे सान्निध्य में जन्म-जन्मान्तरों के पाप भी विनष्ट हो जाते है और वह निष्पाप एवं निर्मल हो जाता है। क्षमा भाव सभी दोषों से मुक्त कर देता है। क्षमा तो मेरी प्रकृति है। साथ ही पापयुक्त प्राणी को मेरे में तनिक भी प्रीति नहीं होती। न मेरे भजन ही उसे भाते हैं। उसका पाप तिरोहित हुआ तभी तो उसका आत्मबल मुझ तक आने को प्रेरित कर पाया। यही कारण है कि जो लोग मन से, अन्तःकरण से शुद्ध, निर्मल एवं स्वच्छ होते हैं, उनमें दुर्भावना नहीं बचती अतः वे स्वभावतः मुझे प्रिय लगते हैं। द्वेष रहित, निष्काम, निष्कपट तथा निर्मल हृदय के प्राणी प्रत्येक स्थिति में मुझे प्यारे लगते है और मैं उन्हें अपनी अहैतुकी कृपा दृष्टि से सरावोर करता रहता हूँ। भले ही रावण ने भेद लेने भेजा हो तो भी किसी भय की, हानि की चिन्ता अकारण है क्यों कि संसार के सभी राक्षसों को अकेले लक्ष्मण ही पलक झपकते नष्ट कर सकते है। यदि वह डर कर भेद भाव लेकर, शरण की इच्छा लेकर या पापों के प्रायश्चित के निमित्त-किसी भी उद्देश्य से आया हो- उसे प्राणवत् सुरक्षित रखना ही मेरा प्रण है, यही आन-बान है।

अतः दोनों ही स्थितियों में उसे प्यार व आदर के साथ यहाँ बुला लाओं। प्रभु की इच्छा जतलाते वचन सुनकर अङ्गद, हनुमान समेत वानर "कृपा सिन्धु, दया निधान रामचन्द्र की जै हो! जै हो!! कहते हुये उसे बुलाने हेतु चले गये। ॥ दो० सं० ४४ तक॥

चौ०-सादर तेहि आगे करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुणाकर।।
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानन्द दान के दाता।।
बहुरि राम छविधाम विलोकी। रहेउ ठटुकि एक टकपल रोकी।।
भुज प्रलम्ब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन।।
सिंध कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा।।
नयन नीर पुलकित अतिगाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता।।
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर वंस जनम सुर त्राता।।
सहज पाप प्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा।।
दो०-श्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुवीर।।४५।।

भाव-

सभी बानरों ने उसको आगे कर आदर के साथ प्रभु के पास चले जहाँ करुणानिधि लखन लाल सहित विराजमान थें। दूर से दोनों भाइयों की सुखद, शान्तिदायक छवि देख कर तृप्ति का अनुभव किया, फिर रामजी को देखकर, जो शोभासिन्धु शोभा विखेर रहे थे- उस छवि को पुनः एक बार देखने का लोभ संवरण न कर सके। अपलक ठिटक कर देखते रहे। लम्बी त्राण देती भुजायें,

लाल आभा वाले, कमल सम नेत्रद्वय और श्यामल नीलाभ राम को देखते रह गये और उन्हे उनका "शरणागत आर्तिहर" शरणागत वत्सल कहना ठीक तथा सटीक लगा। सिंह तुल्य अँधे कन्धे, आयताकार हृदयस्थल, मुखाकृति मदन-मद को चूर करती लग रही थी। उनका शरीर पुलक से भर गया। रोमाञ्च हो आया-उनको कुछ कहते नहीं बना-बस प्रेमाश्रु ही नयनों से नेह की वर्षा करते रहे और विभीषण वात्सल्य भावानुभूति से सिक्त हो गये फिर धैर्य रख बोले-

"हे नाथ! मै राक्षसकुल में जन्मा तथा रावण का छोटा भाई हूँ। तामस शरीर पाप का स्रोत है। पापों में ही रति है जैसे उलूक अंधेरा पाकर पुलकित हो उठता है हेसुखसागर! त्राता!!. आप सारे संसार के दुःख को दूर करने वाले हैं। यही आपका सुयश सुनकर आपकी शरण आया हूँ।" प्रभो! दुःख द्वन्द्वहारी, खरारि राम जी!! मेरी रक्षा करो! रक्षा करो।। आप शोक नसावन है!!! पाहि माम्। पाहिमाम्। कहते हुये प्रभु के चरणों पर गिर ने लगे। ॥ दो०सं० ४५ तक॥

चौ०-असकहि करत दण्डवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष विसेषा।।
दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज विसाल गहि हृदय लगावा।।
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले वचन भगत भय हारी।।
कहुँ लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर वास तुम्हारा।।
खल मण्डली बसहु दिनु राती। सरवा धरम निवहइ केहि भाँती।।
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।।
बरु भलु वास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ विधाता।।
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम कीन्हि जानि जन दाया।।

दो०-तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम।।४६।।

भाव-

हे प्रभो! रक्षा करो!! रक्षा करो यह कहकर चरणों पर गिरते देखा और अविलम्ब राम जी ने उठाकर अपनी बाहें फैलाकर हृदय से लगा लिया क्योंकि विभीषण के दैन्य भाव दर्शाते वचन प्रभु को बहुत भाये फिर अनुज लखन सहित विभीषण को भी समीप बैठा लिया और भक्त-भयहारी राम जी ने अपने श्री मुख से विभीषण की कुशलक्षेम पूँछी। वे बोले- "हे लंकेश! परिवार सहित कुशल क्षेम सुनाओं। तुम्हारा निवास तो कुठाँव (खराब जगह) पर है फिर हे तात! दुष्टों से घिरे हुये कैसे धर्म का निर्वाह कर पाते हो?" विभीषण कुछ उत्तर दे- प्रभु कहते रहे- "मै तुम्हारी रीति नीति जानता हूँ। तुम नीति पर चलने वाले तथा नीति क्या है?-कैसे निभानी चाहिये? भली भाँति इसका मर्म भी जानते हो क्यो कि तुममें अन्याय की दुर्भावना छू तक नहीं गई है। क्या हो मित्र! नरक का रहना कहीं अच्छा है अपेक्षा दुष्टजन की संगति में रहने के। विधाता सदैव कुसंगति से बचायें रखे।

विभीषण प्रसन्न मन बोले-" नाथ! अब आपके चरणों की शरण में आने से

कुशल ही कुशल है जो आपने अपना सेवक-अपना प्रिय जानकर इतनी दया की क्यों कि शोक की जड़ कामनाओं से मोह न छुट पाने में है। और उसे स्वप्न में भी शान्ति नहीं मिलती जक तक वह आपके पावन निष्काम नाम को नहीं भजता। ॥दो०सं० ४६ तक॥

चौ०-तव लगि हृदय वसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद नाना।।
जव लगि उरन वसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि माथा।।
ममता तरुनतमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी।।
तव लगि वसत जीव मन माही। जव लगि प्रभु प्रताप रवि नाही।।
अव मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे।।
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिविध भवसूला।।
मै निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहि काऊ।।
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहि प्रभु हरषि हृदयँ मोहिलावा।।

दो०-अहो भाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन विरंचि सिव सेव्य जुगल पद कंज।।४७।।

भाव-

क्यो कि आपके नाम के भजन का प्रताप है कि 'रघुनायक सायक चाप धरे' जव हृदय में रमजाते हैं तव लोभ-मोह-मिथ्या-दम्भ-अंहकार आदि रुकने का साहस नहीं कर पाते हैं। यही ममता राग-द्वेष का कारण है इसका सघन अन्धकार आपके निष्काम प्रेम के सूर्य की ज्योति फैलते ही विलुप्त हो जाता है।

हे नाथ! रघुनाथ!! आपके श्री चरणों के दुलर्भ दर्शन हो गये। मेरे ताप-सत्रांस-भय पता नही क्या हुये? आपकी अकारण दया ही दैहिक, दैविक और भौतिक तापों को शीतल करने वाली है। चाहें दुष्टों की संगति हो, उन दुष्टों की प्रताड़ना हो, वर्जना हो, उनके द्वारा किया गया अपमान हो, दया सिन्धु की दया में विलीन होकर सब निष्प्रभावी हो जाते हैं।

फिर मैं तो अधम स्वभाव का निशाचर जो ठहरा। कोई अच्छे आचरण नहीं हुये तो भी ऋषियों-मुनियों को दुर्लभ प्रसाद पाकर मैं अभिभूत हो गया हूँ क्यों कि मुझ अकिंचन को भी आपने हृदय से लगा लिया है और हमारी सारी चिंताये हर ली।

"यह मेरा अहो भाग्य ही है कि मैने ब्रह्मा व शंकर जी द्वारा सेवित कृपागार एवं सुखागार प्रभु के श्री चरणों को अपने नयनों से देखा। मेरी कोई कामना न रह जाये यही मेरी याचना है प्रभों!" ॥ दो० सं० ४७ तक॥

चौ०-सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुण्डि संभु गिरिंजाऊ।।
जो नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही।।
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना।।
जननी जनक वन्धु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।

सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी।।
समदरसी इच्छा कछु नाही। हरष सोक भय नहिं मन माही।।
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसे।।
तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे।।

दो०-सगुन उपासक परहित, निरत नीति हढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह के द्विज पद प्रेम।।४८।।

भाव-

विभीषण के परम विनीत, छल कपट से सर्वथा हीन, निर्मल हृदय से सीधे निकले शब्द सुन अत्यन्त प्रमुदित हुये। कृपा दृष्टि से देखा और बोले- हे सुहृद! सुनो!! मैं अपना स्वभाव बताता हूँ। काग भुशुण्डि जी, तथा शिव-पार्वती इसके प्रत्यक्ष साक्षी है, चराचर में सबसे द्रोह भाव रखता हो यदि अपने इस दुर्भाव से भयग्रस्त होकर मेरी शरणागति में आवे और पहले का मद-मोह-छल-प्रपञ्च त्याग दे फिर वह द्रोही कैसे रह जायगा। जब ये सारे दोष उससे स्वतः निकल गयें तब तो वह साधु सदृश ही हो जाता है। उसे मेरी निश्चल भक्ति का पुण्य प्रसाद अवश्यमेव मिलता है।

माता-पिता-भाई-पुत्र-जाया-स्वयं का शरीर-धन-भवन, मित्र तथा परिवार का मोह जिससे चला गया, सबमें समत्व के दर्शन होने लगे, वसुधा ही कुटुम्ब लगने लगे, सबके प्रति समान प्रेम-सम्मान-दया का भाव उत्पन्न हो जाय इस तरह अपने पूर्ण मनोयोग से जो मुझे हीअपने सहित समर्पित हो जाय, कामना त्याग दे, न हर्ष, न शोक, न भय, न उद्वेग, न संवेग शेष रहे, सच पूछो तो यही लोग मेरे तन-मन में व्याप्त रहते है इन्हें मैं उसी भाँति संजोये रखता हूँ जैसे लोभी धन छिपाकर रखते है। तुम सरीखे लोग जो इन बताये गये बाधक तत्वों से सर्वथा मुक्त हो चुके हैं-उन्हीं की खातिर मैं देह धारण करता हूँ।

"सगुणोपासक, परमार्थ निरत, नीति युक्त आचरण करने वाले दृढ़ संयमी, विप्र चरणानुरागीजन प्राणों से भी मुझे प्यारे हैं लकेंश!" उनकी मैं सर्व विध रक्षा करता हूँ, प्रश्रय देता हूँ अन्याय से विरत रखता हूँ, निष्काम, निश्चल मेरी भक्ति तो उन्हें मिल ही जाती है।॥ दो० सं० ४८ तक॥

चौ०-सुनु लंकेस सकल गुन तोरे। ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे।।
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरुथा।।
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहि अघात श्रवनामृत जानी।।
पद अम्बुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा।।
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अन्तर जामी।।
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सोबही।।
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी।।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मांगा तुरत सिन्धु कर नीरा।।

जदपि सखातव इच्छा नाही। मोर दरसु अगोघ जगमाही।।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भई अपारा।।
दो०-रावन क्रोध अनल निज, श्वास समीर प्रचण्ड।
जरत विभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखण्ड।। ४९ क॥
जो सम्पति सिव रावनहि, दीन्हि दियें दस माथ।
सोइ सम्पदा विभीषनहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ।। ४९ ख।।

भाव-

रामचन्द्र जी कहते रहे-फिर, तुममें तो हे लंकेश, मेरे द्वारा अभी कहे गये सभी गुण मौजूद है इससे तुम मुझे अतिशय प्रिय हो। लंकेश कहकर मानों राम जी ने रावण को लंका का राजा बने रहने की मान्यता समाप्त कर दी और विभीषण को वह शासन सूत्र सौंप दिया। लंकेश शब्द राम के श्री मुख से निकलते ही बानर भालु हर्षित होकर प्रभु की जै जै कार करने लगे और वातावरण में उत्साह एवं खुशी का मिला जुला समागम दिखाई दिया।

विभीषण रामचन्द्र जी के वचनाभृत को श्रवणाभृत अनुभव करते नहीं अघा रहे थे। वार बार उनके चरण छूते है। हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। शरीर रोमाञ्चित है। नेत्र सजल है। प्रेम हृदय स्थल में समाता नही सो वह नेत्रों से वह निकला है और स्नेह सिक्त एवं दुराव रिक्त लंकेश विभीषण कहते गये चराचर सहित देवाधिदेव! शरणागत वत्सल!! हे प्रणतपाल!!! आपकी स्थिति कन कन में है। अन्तः करण में भी फिर क्यों न व्याप्त हो अतः हे स्वामी! आप से भला कुछ छिपाया जा सकता है? आपके चरणों के दर्शन कर, मेरी एक मात्र कामना साकार हो गई सो पहले से मैने जो भी कामना की वह आपके प्रेम-रस में सराबोर होने से मुझे सुधि ही न रही कि मैं मांगू भी तो क्या? और क्यो? तथा किसके लिए?

हे नाथ! आप शिवजी के अन्तस्तल में अविरल रमे रहते हैं, उनके विनत तत्व ने आपमें प्रणत के प्रति अगाध प्रेम रस भर दिया है, जिसके सुखद आनन्दातिरेक में वे सभी कुछ भुलाये आप में ही रमे रहते हैं आप उनके और पार्वती जी के बीच के सम्वाद को बड़े प्रेम से सुनते हैं, उसे ही आप अपना चरित स्वीकारते है। उसी चरित-मानसर में शिव रूपी परमहंस आप की कथा के मोती चुगा करते हैं, वह राममय है और आप शिव मय हैं क्योंकि "सोइ जानइ जेहि देउ जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई।।" सो हे सर्वेश्वर! अपनी शिव मन भावनी पावनी, शोक नसावनी चरणों में भक्ति की भीख मुझे भी दे दो। मैं मांगता औ कुछ भी नहीं क्योंकि यह राज्य, कोष सभी कुछ सार्वभौम (Universal) है। हे विश्वेश! हे रमेश!! "राम - राम.... में ही रमा हूँ उसी मनोरम, अभिराम, निष्काम राम नाम में यह मन रमा रहे-अविराम..... निरन्तर..... क्योंकि हे स्वामिन्! कोई अन्य इच्छा होती ही नहीं तो इसका मै क्या करूं?" 'ऐसा ही हो' कहकर समुद्र का जल मंगवाया और विभोर होते हुये बोले- "सखे! यद्यपि तुम्हारी

इच्छा नहीं है परन्तु मेरे सम्मुख आकर खाली कैसे रह सकते हो और बिना उत्तर की राह तके उन्होने विभीषण को तिलक लगाकर लंका का राज्य सौंप मान्यता प्रदान कर दी। नभमण्डल से पुष्पों की वर्षा होने लगी। विभीषण को अभयदान देकर उसे कृतार्थ कर दिया।

वही विभीषण जो अंहकारी, अनाचारी रावण की क्रोधाग्नि में जल रहा था उसे बचाकर चन्दनवत शीतल कर दिया और अटल राज्य देकर कृतार्थ कर दिया। राम की अहैतुकी कृपा की महिमा तो देखो। जो सम्पदा शिवजी ने रावण को दश सिरों को अर्पित करने पर दी थी, वही सम्पदा देते हुये रामचन्द जी ने संकोच का अनुभव किया कि कुछ और भी दे पाते तो संतोष होता। धन्य है ऐसे प्रभु! हे राम!! आप अनन्त है!!! आपकी महिता अनन्त है। ।। दो०सं० ४९क एवं ४९ ख तक।।

चौ०-अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना।।
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा।।
पुनि सर्वग्य सर्व उर वासी। सर्वरूप सब रहित उदासी।।
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक।।
सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा।।
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती।।
कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिन्धु सोषक तव सायक।।
जद्यपि तदपिनीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई।।

दो०-प्रभु तुम्हार कुलगुरू जलधि, कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिअ, सकल भालु कपिधारि।।५०।।

भाव-

ऐसे सरल स्वभाव, कृपालु, दया सागर भगवान राम को छोड़ जो लोग अन्य किसी का भजन करते है उनकी तुलना बिना पूँछ और सींग के पशु से ही हो सकती है। विभीषण की भक्ति एवं अंहकार हीनता तथा नम्रता से अपना भक्त जानकर अपना लिया। इससे कपि समूह में विशेष हर्ष छा गया क्योंकि प्रभु की प्रकृति ही शरणागत को त्राण देने की भावना से सरावोर है और फिर सबके अन्तःकरण में वास करने वाले, सबकुछ जानने वाले, सब में समान रूप से स्थित, उदासीन एवं निष्काम, देवता, ऋषि मुनियों को असुरों से त्राण दिलाने हेतु माया से ही मनुष्य रूप में अवतरित रामचन्द जी ने नीति युक्त वचन इस भाँति कहे-

"मित्र सुग्रीव और विभीषण! अब पहले इसका जतन बताओं कि अथाह समुद्र किस प्रकार पार किया जाय? क्योंकि इससे विभिन्न जातियों के सांप, मगर, बड़ी-बड़ी मछलियों से वैसे भी डर लगता है और वैसे भी इसे पार करके जाना सब तरह से बहुत कठिन है।

यह सुनते ही विभीषण ने कहा- प्रभो! समुद्र विप्र वंशज कहा गया है सो आपके कुलगुरु के तुल्य है, वह कुछ न कुछ उपाय सोंच समझ कर अवश्य सुझायेगा। फिर तो विना परिश्रम के ही सभी कपियों, भालुओं की सेना समुद्र पार पहुँच चलेगी। ॥ दो०सं० ५० तक॥

चौ०-सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई।।
मन्त्र न यह लक्षिमन मन भावा। राम वचन सुनि अति दुख पावा।।
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोपिअ सिंधु करिअ मन रोषा।।
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।।
सुनत विहंसि बोले रघुवीरा। ऐसेहिं करव धरहु मन धीरा।।
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिन्धु समीप गये रघुराई।।
प्रथम प्रनाम कीह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई।।
जवहिं विभीषण प्रभु पहि आये। पाछे रावन दूत पठाये।।

दो०-सकल चरित तिन्ह देखें, धरे कपट कपि देह।
प्रभुगुन हृदयँ सराहहिं, सरनागत पर नेहं।।५१।।

भाव-

राम जी बोले- हां मित्र! उपाय तो तुमने ठीक वताया है। दैव योग से ऐसा हो जाय तव तो वन ही जाय। यही करिये चलकर। लेकिन लक्ष्मण जी को यह राय नागवार लगी। इसीलिये राम जी के वचन सुनकर उन्हे वड़ा दुःख हुआ। उन्होंने छिपाया भी नहीं और बोले-भइया! दैव योग से ऐसा हो गया तो पार हो चलेंगे और न हो पाया तो फिर क्या हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे? यह तो आलसियों का काम है कि दैवाधीन छोड़कर निरीह बने बैठे रहते है। कायर मन ही इस नीति पर चला करते है घिघियाने से अच्छा तो यही है कि कोंप कर इसे अग्नियाण से सुखा दें।

लक्ष्मण जी की दूरन्देशी रामचन्द जी को अच्छी लगी और हँसते हुये बोले-धीरज रखो। यही करेंगे। यह कहकर छोटे भाई को समझाया बुझाया कि पहले समझाने बुझाने से काम चल जाय तभी कोई उपाय सोंचना उचित है-यही नीति भी है। लक्ष्मण जी ने इस पर हल्की मुस्कान बिखेर सहमति जताई। पहले तो भगवान राम ने समुद्र के निकट जाकर सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारे कुश के आसान पर बैठ गये कि कुछ समय प्रतीक्षा कर ली जाय कि समुद्र क्या उपाय सुझाता है?

उधर जव विभीषण रावण के दरवार से नभ मार्ग से होता हुआ रामचन्द जी के पास अपने सचिव सहित आया था, तो उसके पीछे पीछे रावण ने अपने गुप्तचर लगा दिये थे उन्होंने रामादल में घुसने का आसान तरीका यह सोचा कि दोनो लोग वानरों का रूप वना लें। इससे पहचाने नहीं जा सकेंगे। यही किया। और यहाँ का पूरा दृश्य भली प्रकार देखा। रामचन्द जी का स्वभाव और व्यवहार देखा। विभीषण तथा उसके सचिव को शरण में आया जान उनकी पूर्ण सुरक्षा का

आश्वासन देकर विभीषण कों लंका के राजाा के रूप में मान्यता दे दी स्वगत (मन ही मन) रूप में राम के गुणगान और प्रंशसा में लीन हो गये ॥ दो॰ सं॰५१ तक)॥

चौ॰-प्रगट वखानहिं राग सुभाऊ। अति सप्रेम गा विसरि दुराऊ।।
रिपु के दूत कपिन्ह जव जाने। सकल वाँधि कपीस पहिं आने।।
कह सुग्रीव सुनहु सव वानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर।।
सुनि सुग्रीव वचन कपिधाये। वाँधि कटक चहुँपास फिराये।।
वहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे।।
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना।।
सुनि लक्षिमन सव निकट वुलाये। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाये।।
रावन कर दीजहु यह पाती। लक्षिमन वचन वाचु कुलघाती।।

दो॰-कहेउ सुखागर मूढ़ सन, मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार।।५२।।

भाव-

फिर वे राम चन्द्र के गुणों का वखान करते हुये निष्काम हो गये निष्कपट हो गये और कपट से वनाया स्वरूप भी वास्तविक वना लिया इस कदर राम भक्ति में लीन हो गये। फौरन वानरों ने इन्हें पहचान लिया और वाँधकर सुग्रीव के पास लाये। सुग्रीव इसी अवसर की तलाश में जैसे वैठे हुये हो -वोले-इनके नाक-कानकाटकर अंग भंग करके भेजा जाय। दौड़कर उन्हे वाँधा और एक चक्कर चारों तरफ लगवाया। फिर मारने पीटने लगे। रोने, चिल्लाने पर भी वानर उन्हें पीटे जा रहे थे। तव तक किसी वानर ने कहा अव इन दोनों के नाक कान काट लिये जायं तव उन्होंने कहा- तुम्हे राम की सौगन्ध है जो ऐसा किया- तव तक लक्ष्मण जी का ध्यान उधर गया और पूरा हाल जाना और दूतों की चिरौरी से दया आ गई फिर दोनों को हँसते हुए छुड़वा दिया और कहा कि मै एक चिट्ठी दे रहा हूँ। रावण को दे देना और उस कुलघाती से कहना कि जो लक्ष्मण ने कहा है वह पढ़कर मनन करो। सोंचो।

दश मस्तिष्क रखते हुये भी क्यों मूढ़ता व्यापी हुई है ओर एक मौखिक सन्देश भी कह देना कि दशमुख मूर्खता छोड़कर सीता को वापिस करने के वास्ते उनसे मिलो चलकर नही तो तुम्हारा काल निकट आ गया है। दूतों का क्या, वे प्रसन्न मन चल दिये। जान वची लाखों पाये।। दो॰सं॰ ५२ तक।।

चौ॰-तुरत नाइ लक्षिमन पद माथा। चले दूत वरनत गुन गाथा।।
कहत राम जसु लंका आये। रावन चरन सीस तिन्ह नाये।।
विहसि दसानन पूँछी वाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता।।
पुनि कहु खवरि विभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी।।
करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी।।

पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई।।
जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा।।
कहु तपसिन्हि कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अतिमोरी।।
दो०-की भइ भेंट कि फिरि गये, श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपुदल तेज बल, बहुत चकित चित तोर।।५३।।

भाव-

दूत लक्ष्मण को शिर नवाकर जल्दी से चल दिये राम जी के गुणों का गान करते हुये लंकापुरी पहुँचकर रावण को चरण छूकर प्रणाम किया। रावण हँसते हुये बोला-"अरे शुक! तू चुप क्यों है? अपनी कुशलक्षेम तो बोल! और हां, फिर विभीषण की भी खबर क्या और कैसे लगी वह भी बताओ। वह तो अब मौत के ही कगार पर बैठा लगता है। यहाँ भला चंगा राज्य करता था- वह उसे नहीं भाया। लंका छोड़ शत्रु की शरण पहुँचा है। अभागा जौ का घुन! अब तो उसे पिसना ही है। रीछों-बानरों की सेना काल वश आ पहुँची है, उसका कुछ हाल चाल बताओं। समुद्र बीच में पड़ गया वरना यहा के निशाचर उन्हें चट कर गये होते। समुद्र की रहमदिली तो देखों!! मौन क्यों खड़े हो? फिर उन मुझसे डरे तपसी लड़को के बारे में बताओ। वे वहां दिखाई पड़े या मेरा रूतबा सुनकर ही भाग गये? क्यों चुपचाप चकित खड़े हो? शत्रु की कुमुक ताकत, तकनीक आदि के बारे में क्यों नहीं बताते? या फिर कुछ देख सुन नहीं पाये? रावण बिना प्रश्न का उत्तर पाये प्रश्न पर प्रश्न करता हुआ आत्ममुग्ध सा लगता था॥दो०सं० ५३ तक॥

चौ०-नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसे। मानहु कहा क्रोध तजि जैसे।।
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा।।
रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना।।
श्रवन नासिका काटै लागे। राम सपथ दीन्हे हम त्यागे।।
पूँछिउ नाथ राम कटिकाई। बदन कोटि सत बरन न जाई।।
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी।।
जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपन्हि महु तेहि बल थोरा।।
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला।।
दो०-द्विविद मयन्द नील नल, अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ, जामवन्त बल रासि।।५४।।

भाव-

अभी तक मौन रहे वे सोंच रहे थे कि किस प्रकार शुरु किया जाय। फिर हिम्मत करके बोले- 'महराज! जैसे कृपा करके इतने सारे प्रश्न पूंछ डाले हैं, हे नाथ!! वैसे ही कृपाकर क्रोध न करियेगा और जो हम कहने जा रहे हैं उसे मानियेगा। हम दोनों विभीषण के पीछे-पीछे लुक छिप कर पंहुचे थे। जब विभीषण वहाँ पंहुचे, तो बड़े भाई राम ने आपके भाई माथे पर समुद्र का जल मंगाकर

"लंकेश" कहते हुये तिलक कर दिया जिस पर भालु कपि राम की जय-जयकार कर उठे। कुछ देर तो हम छिपे देखते रहे फिर न जाने कैसे बन्दरों ने पहचान कर हमें पकड़ लिया फिर बांध कर सुग्रीव के पास ले गये वही बानरों की सेना का राजा है उसने बड़ी यातना दिलवाई और नाक कान काटने को कहा-बानरों ने जैसे ही उसकी आज्ञा पालन हेतु शीघ्रता दिखाई, तब तो बड़ी मुश्किल से-जब हमने राम की शपथ दिलाई तब कहीं छोड़ा। रावण विस्मित था। फिर सुनने लगा।

हे महाराज! सेना की गिनती कैसे बताऊँ यह तो करोड़ो मुंह से कहूं फिर भी कुछ कमी रह जायेगी। भाँति-भाँति के भयानक, बड़े, विकराल मुँह वाले बानर कहां तक गिनता। जिसने लंका जलाई थीं, वह भी वहां था, लेकिन वह तो कोई खास बलवान नहीं दिखा उससे तो हमें सभी बानर डरावने तथा शक्तिशाली लगे। सबके नाम किसे याद रहेंगे? एक से एक नामी बानर-भालु बड़े भयानक और पहाड़ के पहाड़ जैसे हैं। चलते है तो जैसे कई कई हांथी एक साथ पैर रखकर मानों चल रहे हो। कुछ के नाम तो महाराज! सुनने में आये जिनमें द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटाक्ष, दधिमुख, केहरि, निसठ-सठ जिन्हें कुमुद तथा गव नाम से भी पुकारा जाता है और जामवन्त तो- क्या कहें-अथाह बल वाला दिखाई दिया। हे नाथ! सभी के नाम न तो जान ही मिले और फिर नाम जानने-न जानने से कोई खास लाभ नहीं होने वाला है। ॥ दो सं ५४ तक॥

चौ०-ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना।।
रामकृपा अतुलित बल तिन्हही। तृन समान त्रैलोकहिं गनहीं।।
अस मैं सुना श्रवन दस कन्धर। पदुम अठारह जूथप बन्दर।।
नाथ कटक महँ सो कपिनाही। जो न तुम्हहिं जीतै रन माही।।
परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा।।
सोषहि सिंधु सहित झष व्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला।।
मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बयन कहहिं सब कीसा।।
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका।।

दो०-सहज सूरकपि भालु सब, पुनि सिर पर प्रभुराम।
रावन काल कोटि कहुँ, जीत सकहिं सग्राम।।५५।।

भाव-

जिनके नाम हमने गिनाये हैं, वे सुग्रीव जैसे बलवान् लड़ाके हैं। और भी असंख्य इन्हीं की तरह इधर उधर झुण्ड के झुण्ड घूम फिर रहे थे वास्तव में दोनों गुप्तचर वहाँ से राममय होकर लौटे थे। इसीलिये वह रावण से अब अपनी बात दो टूक कह रहे थे।

आगे शुक कहता रहा-"महाराज! मैने जो अपने कानों से स्वयं सुना था-वह यह है कि वे अठारह पदम बन्दरों के सेनानायक (Group Commander) थे। वे सब आपस में तर्क वितर्क कर रहे थे कि मैं रावण को मारूंगा-मैं मारूंगा। कोई अन्य

कहता था। कि मैं उसकी वीसों भुजाये उखाड़ डालूंगा। उनकी वहस सुनने से लगा कि लड़ाई होने पर शायद ही कोई ऐसा हो जो आपको जीत न सके। यह सुनते ही रावण की भृकुटि टेढ़ी हुई किन्तु फिर सम्भल कर सुनने लगा। वे सव "जल्दी चलो प्रभो! जल्दी चलो!!" और कुपित तथा लड़ने को तैयार से लग रहे हैं लेकिन राम इसकी आज्ञा नहीं दे रहे हैं वरना वे तो इसी क्षण आ सकते हैं। कोई कह रहा था कि समुद्र को सोंख कर रास्ता वना लें। कोई कोई कह रहें थे। पर्वतखण्डों से समुद्र को पाटकर रास्ता वना लिया जाय।

वे सव यही दहाड़ कर कह रहे हैं कि रावण को मसल मींज कर धूल में मिला देंगे। टुकड़े टुकड़े करके साथ लेते आयेंगे। भयानक मुंह फैलाये, गर्जते दहाड़ते- लगता है सारी नगरी को ही लीलना चाहते हैं। मुझे तो महाराज यह आश्चर्य है कि इतने वलवान रीछ वानर कैसे धैर्य धर कर ठहरे हैं। लगता है उनके सिर पर छत्रछाया राम की है वे तो उनसे भी अधिक धीरधारी लगे क्योंकि इतने उत्साह में सेना के आने पर तो कूच करने को कह दिया जाता है। लेकिन अत्यन्त धैर्यवान भगवान राम को देखो-इस पर भी क्या सोंचते है? लगता है कोई दीर्घगामी योजना उनके दिमाग़ में तो नहीं है?।। दो०सं० ५५ तक।।

चौ०-राम तेज वल बुधि विपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई।।
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहिं पूँछेउ नय नागर।।
तासु वचन सुनि सागर पाहीं। मांगत पन्थ कृपा मन माही।
सुनत वचन विहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा।।
सहज भीरु कर वचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई।।
मूढ़ मृषा का करसि वड़ाई। रिपु वल वुद्धि थाह मैं पाई।।
सहज सभीत विभीषन जाके। विजय विभूति कहाँ जग ताके।।
सुनि खल वचन दूत रिस वाढ़ी। समय विचारि पत्रिका काढ़ी।।
रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती।।
विहसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन।।

दो०-बातन्ह मनहि रिझाय सठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम विरोध न उबरसि, सरन बिष्नु अज ईस।। ५६ क।।
कीतजि मान अनुज इव, प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल, खल कुल सहित पतंग।। ५६ ख।।

भाव-

हे नाथ! "इसीकारण राम ने आपके भाई से सलाह पूँछी कि कैसे समुद्र पार किया जाय। उनका भाई तो कह रहा था- एक वाण चलाकर समुद्र को सुखा दीजिये और कटक पार चलकर फौरन विगुल बजा दे लेकिन राम ने कहा-ठहरो, अधिक जल्दवाजी ठीक नहीं है धीरज धरो यह भी करूंगा। हो सकता है यह न करना पड़े। डराने धमकाने से काम निकल जाय। इसीलिये नाथ मैंने अपनी

आँखों से देखा कि प्रार्थना कर समुद्र से रास्ता पूँछ रहें हैं। क्रोध का तो नाम ही उनमें नहीं है।"

जब तक शुक आगे जबतक कुछ बोले-रावण तो पहले तो खूब हंसा फिर स्वयं कह उठा-"अब तपसियों की मति मारी गयी है तभी तो बन्दरों से सहायता लिया आदमी ढूढ़े नहीं मिले। सलाह भी किससे ली-डरपोक विभीषण से-महाकायर से!! अच्छा शुक! तू अब चुप रह!! मैने तेरी इतनी बातों से तपसियों ओर उनकी सेना के बल बुद्धि की थाह पा ली है। भला ऐसे में भी उन्हें जीत का भरोसा है?

रावण बहुत दुष्ट था ही क्योंकि सभी गुणों को ढकने और लुप्त करने वाला महादुर्गुण-अहङ्कार-उस पर हावी था। उसी के वश होकर वह बोल रहा था-सोंच रहा था-फैसलें ले रहा था। शुक ने सोंचा-अब लक्ष्मण की भेजी चिट्ठी दे देनी चाहिये और बोला हे नाथ छोटे तपसी ने चिट्ठी आपको देने के लिये मुझे दी है। वह तो बड़ा जिद्दी लगता है। आपको "कुलघाती" यह कहकर हमें चिट्ठी सौंपी। नाथ इसको पढ़वाकर आप कलेजा ठण्डा कर लीजिये। शुक ने यद्यपि यह बड़ा तीक्ष्ण व्यंग्य बाण छोड़ा था- लेकिन रावण का दिलो दिमाग पाक साफ नहीं था। दुर्भावना युक्त होने, बस अपने स्वार्थ मद की धुन में रमें होने से हंस कर चिट्ठी बायें हांथ में लिया फिर सचिव को पढ़ने को कहा और स्वयं सुनने लगा।

<u>पत्र का ब्योरा इस तरह का था :-</u>

"अरे धूर्त! ठकुर सुहाती सुनने से तेरा भला होने वाला नहीं इससे तो तेरे कुल का बंटाधार हो जायेगा। तेरे माथे कुलघाती होने का ठप्पा लग जायेगा। तू कैसा विद्वान् तथा नीतिवान् अपने को समझ रहा है। तुझे नहीं मालूम- राम के विरोध से ब्रह्मा-विष्णु-शिव भी तुझे नहीं बचा सकते।"

अब दो ही रास्ते हैं।

"एक, या तो अहङ्कार त्याग विभीषण की तरह विनत भाव होकर प्रभु राम चन्द्र जी के पैरों पर गिरकर क्षमा मांगे या फिर, दो, राम जी के करालतम बाण की अग्नि में पूरे राक्षस कुल समेत पतंगा बनकर राख बन जा"

"तीसरा रास्ता अब है ही कौन!" ॥ दो०सं० ५६ क एवं ख तक॥

चौ०-सुनत समय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहिं सबहि सुनाई।।

भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा।।

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकति अभिमानी।।

सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा।।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ।।

मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही।।

जनक सुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे।।

जव तेहि कहा देन वैदेही। चरण प्रहार कीन्ह सठ तेही।।
नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपा सिन्धु रघुनायक जहां।।
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपां आपनि गतिपाई।।
रिषि अगस्ति की साप भवानी। राक्षस भयउ रहा मुनि ज्ञानी।।
वन्दि राम पद वारहिं वारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगधारा।।
दो०-विनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन वीति।
बोले राम सकोप तव, भय विनु होइ न प्रीति।।५७।।

भाव-

पत्र का सार सुन कर रावण भीतर से तो भय से विचलित हो गया। लेकिन भय युक्त मुस्कान भी बिखेरता हुआ सबको सुनाता हुआ बोला-"इस छोटे तपसी की आत्म-प्रशंसा-अभिमान तो देखो सभी लोग! जमीन पर गिरा पड़ा है। कहता है कि आकाश हाथ में आना ही चाहता है। नादान कहीं का!!

शुक वहाँ (रामादल में) वहुत देर ठहरा था। रामादल का धीरज, आत्म विश्वास, नीति-प्रतिपालना आदि से वहुत प्रभावित हुआ था। राम के सान्निध्य में उसका दुरावरण हट चुका था और उसकी जवान से यथार्थ ही निकल रहा था-प्रभु की यही तो माया है-वह कहने लगा-

"नहीं नाथ! आप व्यर्थ ही अन्यथा क्यों समझ सोंच रहे हैं। पत्र की वातें सच हैं। अभी क्या विलम्ब हो गया? अंहङ्कार-क्रोध-मिथ्या दम्भ अव भी तजिये तो आपका और सारे समाज का कल्याण हो जाये। उनसे विरोध ही किस वात का? वह तो वहुत कोमल स्वभाव के हैं। त्रैलोक्य के त्राता-धाता राम मिलते ही तुम्हारे पिछले कृत्य भुला देंगे। ये वड़े ही कृपालु हैं। कारण को पहले समाप्त करिये नाथ! सीता को उन्हें सौप दीजिये, वस, इतनी-सी मेरी कही वात मान लीजिये।

"सीता को सौंप दीजिये" यह निकलते ही शुक पर उसने जोर लात मारी-उसकी निर्णय क्षमता लुप्त हो चुकी थी-गलत निर्णय लगातार किये जा रहा था-शुक ने फिर भी उसे प्रणाम किया ओर उसका मन भ्रमर जिन चरण-कमलों में रमण कर रहा था-वही-श्रीराम जी के चरण-शरण को ही वरण किया। प्रणाम किया। स्वगति ओर सुगति प्राप्त किया। सुमति का सुफल प्राप्त किया।

शिव जी कहते हैं- हेभवानी! वह अगस्त्य ऋषि के शाप के कारण राक्षस हो गया था क्योंकि कुमति से ग्रस्त कुछ भूलकर वैठा था-वैसे वड़ा ज्ञानी मुनि था ही। राम के चरणों का प्रताप तो देखो भवानी!! वह शाप मुक्त नहीं हुआ, वल्कि पुनः प्रभु प्रेरणा से अपने आश्रम को जाकर राम राम में ही पुनः मन को रमाने लगा। धन्य है प्रभु की क्षमा, दया की, कृपा की प्रकृति! इस सत्वमयी प्रकृति को प्रणाम!! और शिव मगन होकर रूक गये। फिर आँखें खोली। कथा कहने लगे-

भवानी! यह घटना क्रम यहीं रोककर उधर की कथा सुनो, राम द्वारा समुद्र की प्रार्थना करते तीन दिन हो गये। कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। जलधि जड़ ही तो ठहरा। करनी भी तो जड़वत् ही करता। आखिर कार सर्वविध शान्त राम को भी

क्रोध आ ही गया यद्यपि वह दिखावे भर था। वे वोले-लगता है विना भय के प्रीति नहीं उपजती। यह निश्चय लग रहा था अतः ।।दो० सं० ५७ तक।।

चौ०-लक्षिमन वान सरासन आनू। सोपौं वारिधि विसिख कृसानू।।
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुन्दर नीती।।
ममता रत सन ग्यान कहानी। अतिलोभी सन विरति वखानी।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर वीज वयें फल जथा।।
असकहि रघुपति चाप उठावा। यह मत लक्षिमन के मन भावा।।
सन्धानेउ प्रभु विसिख कराला। उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला।।
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने।।
कनक थार भरि मनिगन नाना।। विप्ररूप आयउ तजि माना।।

दो०-काटेहिं पइकदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेस सुनु, डाटेहि पइ नव नीच।।५८।।

भाव-

भइया लक्ष्मण! धनुष तथा आग वाण ले आओ। उससे समुद्र को सुखा दूँ। अनुनय-विनय-प्रतीक्षा, व्यर्थ गये। नीतिकारों ने ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि मूर्ख से विनय, छलकपट वाले से प्रेम, सूम-प्रवृत्ति वाले से नीतियों का वखान व्यर्थ जाते हैं। वैसे ही माया मोह ग्रस्त को ईश्वर कथा का कहना भी वैसे ही निष्फल होते है जैसे ऊसर भूमि में वीज डालकर जमने की आशा रखना। लक्ष्मण ने धनुष वाण प्रसन्न होकर दिया क्योंकि पहले से ही वे यही चाह रहे थे- धनुष चढ़ाते ही लक्ष्मण प्रभुदित हो गये।

फिर चला दिया अग्निवाण राम ने। लगते ही समुद्र में गहरे तक ज्वाला उफनी। मगर, सर्प, मत्स्य प्रजातियाँ तिलमिला उठीं। इससे समुद्र विचलित हुआ। ब्रह्मण रूप धरा। स्वर्णथाल में मणि-मुक्ता भर अंहङ्कार विरत, हाथ जोड़ राम की विनती करने लगा।

काग भुशुण्डि जी कहते हैं-हे पक्षिराज कितने ही तरह से बार-बार कोई सींचे, लेकिन केला जमीन के ऊपर काट दिया जाय-बस नई नई जगहों से नये केले निकलने लगेंगे। हे गरुड़! डाट-फटकार, प्रताड़ना से ही नीच भावयुक्त प्राणी झुकता है। वही हाल वही नीचता समुद्र ने दिखाई। तीन दिन राम परम कृपालु राम को बैठाये रखा-उनकी विनय तक कान नही किया।। दो०सं० ५८ तक।।

चौ०-सभय सिंधु गहिपद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी।।
तव प्रेरित मायाँ उपजाये। सृष्टि हेतु सव ग्रन्थनि गाये।।
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सोतेहि भाँति रहें सुख लहई।।
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही।।

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।
प्रभु प्रताप मैं जाव सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि वड़ाई।।
प्रभु अग्या अपेल श्रुतिगाई। करौं सो वेगि जो तुम्हहि सुहाई।।
दो०-सुनत विनीत वचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि विधि उतरै कपि कटकु, तात सो कहहु उपाइ।।५९।।

भाव-

जव राम के क्रोध द्वारा प्रताड़ित हुआ, चरण पकड़कर करने लगा तरह तरह से विनती। हे स्वामिन मैं अवगुणी हूँ जो आपकी वात अनसुनी कर दी। मेरे इस दुर्भाव को क्षमा कर दें। क्यों कि जड़ कहे जाने वाले पंचतत्वों से ही तो मिट्टी का शरीर वनता है, वह भी आपके अंश (जीव) के विना जड़ ही तो रहता है। मैं तो इनका पंचम भाग ही ठहरा, सो निर्जीव शरीर तुल्य भी नहीं हो सकता और फिर-ये सभी तत्व भी तो आपकी माया से ही अद्भुत है। यही सद्ग्रन्थों का सार तत्व है। आपकी प्रेरणा ही तो सबको अच्छा वुरा कर देती है। प्रेरणा ही प्रज्ञा है। वही आपकी आज्ञा वनकर जैसा जिसको कहती है, वह वैसे ही व्यवहार करता है-उसी में सुख पाता है। उसने तो वड़े-वड़े ज्ञानियों को ज्ञान शून्य कर दिया। मै तो किस योग्य हूँ। सीख मिल गई। अच्छा ही हुआ। लेकिन फिर कहना पड़ता है नाथ! मर्यादापुरुषोत्तम आप हैं। सीमा-रेखा भी आपने ही तो खींच रखी है। ठोल के घेरे को ठोंक दे तो आवाज अच्छी हो जाती है। ठोल वही की वही। सभ्य लोगों के समाज में जो नही गया है- वह स्वतः तो कुछ समझने से रहा, शूद्र (एक दुर्भाव) तथा पशु भी इसी तत्व से हीन रहते हैं, यही स्त्री की गति है वह भी किसी श्रेष्ठ निर्देश विना स्वतः गलती कर वैठती है लेकिन गलती की भी एक सीमा होती है। ये सव वर्जना पाते ही सम्हल भी जाते हैं। लेकिन वर्जना, प्रताड़ना भी एक सीमा तक ही सुफल दे पाती है अन्यथा महती विनष्टि! हां नाथ महती विनष्टि!!

आपही की मर्यादा आप से सुरक्षित नही होगी तो भला और किससे होगी? मैं तो आपके प्रताप से निर्जल, तत्वहीन हो जाँऊगा पर नाथ! आप पर कृपालु न रह जाने का दाग लग जायेगा। मैं तो सूख ही जाऊँगा। आपकी सेना भी पार ही हो जायेगी, परन्तु मैं ही नही रहूँगा तो मेरा वड़प्पन कहाँ से भला रह जायेगा? आप कृपा सागर हैं, दया सागर हैं, करुणा सागर हैं, सुखसागर हैं, प्रेमसागर है, अनन्त प्रेमार्णव है, जव सागर ही तिरोहित हो जायेगा तो हे नाथ! श्रुतियों, स्मृतियों में आपकी आज्ञा, प्रज्ञा, संज्ञा जो असीम है, अनन्त है, अप्रतिम है, अनुपम है, सो यही तो होना है जो आपकी प्रेरणा निर्देश करेगी, सो हे कृपानिधान! कृपाकर आज्ञा दे जो आपको रुचे, मैं उसी का पालन करुँ प्रभो!

समुद्र के अति विनीत अंहङ्कारहीन वचन प्रभु को वहुत प्रिय लगे। प्रभु का क्रोध भी तो ऊपर से ही था, भीतर तो कृपा ही अथाह भरी है। हँसे। वोले-हे तात! जैसे ही यह सेना पार उतर जाय, वही उपाय सुझाओ-वस! ।। दो० सं० ५९ तक।।

चौ०-नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई।।
तिन्हके परसा कियें गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।।
मैं पुनि उरधरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ वल अनुमान सहाई।।
एहि विधि नाथ पयोधि वँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ।।
एहिं सर मम उत्तर तट वासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी।।
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहि हरी राम रनधीरा।।
देखि राम पौरूष वल भारी। हरषि पायोनिधि भयउ सुखारी।।
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन वन्दि पाथोधि सिधावा।।

छन्द : निज भवन गवेनउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भावई।
यह चरित कलि मल हर जथामति दास तुलसी गावई।।
सुख भवन संसय समन दवन विषाद रघुपति गुनगना।
तजि सकल आस भरोस गावहिं सुनहि संतत सठमना।।

दो०-सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिन्धु विना जलजान।।६०।।

भाव-

समुद्र अविलम्व मुखर हुआ। वोला-नाथ! नल-नील वानर दोनों भाई है वालपन में उन्हें ऋषि का यह आशीर्वाद था कि उनके छूने से भारी से भारी पर्वत खण्ड भी आपके प्रताप से, भवत्राता के सद्भाव से समुद्र पर तैरने लगेंगे। साथ ही, आपके प्रताप-वल को आत्मसात कर अपने युक्ति वल के तुल्य सहायता करूंगा। हे प्रभो! आप समुद्र पर सेतु वनाना प्रारम्भ करवा दें जिस से आपकी सत्कीर्ति का प्रकाश त्रैलोक्य में छा जाय। और हे नाथ! अपने हाथ के वाण से मेरे उत्तर तट के कुख्यात तस्करों को नष्ट कर दीजिये-वे आये दिन लूटपाट करते हैं, मेरे हृदय स्थल से मणि, मुक्ता, प्रवाल, रत्न आदि चुराकर निकाल कर ले जाते है। जीव जन्तुओं को भी हानि पहुँचाते है। राम ने यह व्यथा फौरन दूर कर दी।

विप्ररूप धारी समुद्र अनन्त जलराशि में फिर समा गया। राम को भी यह अच्छा लगा। यह चरित्र कलियुग के पापों-सन्तापों का हरण करने वाला है। अपनी मति अनुसार तुलसी ने भी गाया है। प्रभु गुण धाम है, सुखधाम है, संशय दुःखादि के शामक है। तुलसी दास जी कहते हैं- रे मूढ़ मन। सव आस भरोस तज उन्ही को सुन,उन्ही को गुन, गाने के लिये वहुत कुछ है लेकिन तू उन्ही को चुन- अविरल, अविराम, अथक।।

श्रीराम चन्द्र भगवान् का गुणगान मङ्गल भवन है। अमङ्गलहारी है। जो प्यार और आदर से इसे कहते-सुनते है, गुनते है, उन्हें भव ताप-भव-भय भव सिन्धु से मुक्त होने के लिये वही नौकावान वन जाते हैं।

सियापति रामचन्द्र की जै
उमापति महादेव की जै
पवनसुत हनुमान की जै
ॐ शिव ॐ शिव ॐ शिव ॐ शिव ॐ शिव

।। श्री रस्तु ।।

सियाराम जी की आरती

आरती जनक दुलारी की। - आरती अवध विहारी की।।
चरन तोरे गंगा लहराये - सरन तोरे सुरनर मुनि आये।
आरती कलिमलहारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।१।। आरती जनक०
पादुका चरननि की तोरे - भरत जी पूजहिं करजोरे।
आरती पालन हारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।२।। आरती जनक०
लखन रिपु सूदन से भाई - भ्रात हित राजिहु ठुकराई।।
आरती चरन पुजारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।३।। आरती जनक०
सुमित्रा कैकेयी धनिधनि - कौसिला के लागौं चरननि।
जगत हित मनु तनुधारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।४।। आरती जनक०
वंश इक्ष्वाकु ककुत्स्थ लसे - धन्य रघु-अज-दशरथ विहँसे।
अयोध्या जनमन हारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।५।। आरती जनक०
माण्डवी की महिमा भारी - उर्मिला हैं जग से न्यारी।
कीर्तिश्रुति अतिशय न्यारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।६।। आरती जनक०
धन्य शिव घट-संभव- कागा - तुलसि बलमीकहुँ अनुरागा।
आरती आरतिहारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।७।। आरती जनक०
अहिल्या शबरी के भागा - चरन रति रघुवर की भागा।
चरनरज पावनवारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।८।। आरती जनक०
सुलोचनि को भी बलिहारी - धन्य है पातिव्रतधारी।
उर्मिला सी प्रनवारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।९।। आरती जनक०
धन्य हैं अतुलित बल धामा - वीर बजरंगी निहकामा।
आरती शिव अवतारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।१०।। आरती जनक०
नाथना तुमसे कछु मागौं - जगत सोवत चरननि लागौं।
भगत पन राखन हारी की - आरती अवध बिहारी की।। ।।११।। आरती जनक०

卐 रामलला की आरती 卐

जय जय राम लला - साईं - जय जय राम लला
तुमरो नाम उचारत - तुमरो॰ - सुख सम्पति सकला -साईं॰ ।।१।।
नाम तुमार निरन्तर - शिव भोले गावैं
काग भुशुण्डि लहैं सुखु - काग॰-राम राम ध्यावैं -साईं॰ ।।२।।
दशरथ अजिर विहारी - कौसल्या नन्दन
महिमा अमित अपारी - महिमा॰- तुमरी रघुनन्दन -साईं॰ ।।३।।
वाम अंग सिय सोहत - लखन लहत संगा
तुमरे चरननि लहरति - तुमरे॰-विहरति श्री गंगा -साईं॰ ।।४।।
को महिमा कहिपावै - तुम संग हनुमन्ता
महिमा शिव जी जानैं - महिमा॰- जय जय श्रीकन्ता -साईं॰ ।।५।।
घट संभव कहि हुलसत - जय जय धनुधारी
धन्य अहिल्या शवरी - धन्य॰-चरनन चितचारी -साईं॰ ।।६।।
याज्ञवल्क्य सुखु पावत - महिमा कहि तुमरी
भरद्वाज के श्रवननि - भरद्वाज॰- भइ अमरित लहरी -साईं॰ ।।७।।
धन्य अञ्जनी नन्दन - धनि धनि बल्मीका
तुमरे गुन गन गावत - तुमरे॰-भावत है जी का -साईं॰ ।।८।।
धरम करम हित साईं - अमित रूप धारा
विप्र धेनु सुर कारन- विप्र॰-तुमरो अवतारा -साईं॰ ।।९।।
भरत करत पद वन्दन - हरत सकल तापा
तुमरे अधरन उचरत - तुमरे॰- शिव शिव शिव जापा -साईं॰ ।।१०।।
धनि धनि राम खरारी - धनि धनि अघहारी
लघु मति भनति लजाई - लघु॰- महिमा अतिभारी -साईं॰ ।।११।।
"नित्यअनन्द" अनन्दत वन्दत रघुराई
जन जन तन मन हुलसत, जन जन॰-चरनन चित लाई -साईं॰ ।।१२।।
काम क्रोध मद लोभा अनगिन तमहारी
भरत लखन रिपु सूदन - भरत॰- की महिमा न्यारी -साईं॰ ।।१३
जय सिया राम सिय रामा - जय जय सिय रामा
जय जय जय सिय रामा - जय॰- जय पूरन कामा -साईं॰ ।।१४।।
है प्रभु आस तिहारी - जय आरति हारी
आरति वारति तारति - आरति॰- तुमरी बलिहारी -साईं॰ ।।१५।।
जय जय राम लला - साईं जय जय राम लला
तुमरो नाम उचारत - तुमरो॰- सुख सम्पति सकला -साईं॰ ।।१६।।
साईं जय जय राम लला

महाशक्तिमानों का वार्तालाप

दो महाशक्तियों की प्रत्यक्षवार्ता कितनी लुभावनी, कितनी अलौकिक एवं कितनी भर्म भरी है जिसका प्रत्यक्ष दिग्दर्शन रघुवंशी राम और वीर बजरंगी के वार्तालाप में होते है। जो साक्षात् शिव हैं जिन्हे स्वयं राम निरंतर भजते है और अञ्जनी नन्दन की महिमा भला कौन कह पायेगा जो अपने हृदय में सिया-राम-लखन जी को निरन्तर बिराजमान रखते हैं। स्वयं राम कहते हैं "भरत भैय्या! कपि ते उरिन हम नाही"

"तुलसिदास मारुत सुत की प्रभु, निजमुख करत बड़ाई
भज मन राम चरन सुखदाई"

जब राम जी पूछते हैं "जनक नन्दिनी सीता के दिन रात किस तरह बीतते हैं। तो वह भीगे नेत्रों से कहते हैं "नाथ! बताते हुये छाती फटती है" प्रभो! मेरी जननी को शीघ्र चलकर लाइये! मैं उनका दु:ख किस तरह कहूँ! वे तो बात करते करते आंसुओं में सराबोर हो गई थी।

राम जी रो पड़े और अपना कर कमल केशरीनन्दन के सिर पर रख दिया। शिव जी कहते है "हे उमेश्वरि! मैने इसे अनुभव किया है जिसे शब्दो में कहने का मेरा सामर्थ्य नहीं है।

हनुमान जी ने वहाँ का पूरा वृत्तान्त सुनाया। रघुवीर जी मन में सिहाते हुये कहते हैं वीर बजरंगी! शंकर जी कल्याण करें, आप सभी कपि रीछ मिलकर लंका पर डंका बजा दें! रघुवीर जी के काम के लिये आप समर्पित हैं ही, ऐसे अनन्त ऊर्जावान् शक्तिमानों को भला कौन पराजित कर सका है? आप उनकी महिमा का एक मामूली अंश छन्दों में देखें और उनके नेह रस में डूब जायं"

भूति विभूति प्रभूति प्रभो! अनुभूति भई हनुमन्न गोसाई
हास-सुहास-प्रभास, अभास भयो, तव नाम उचारत साई
राजहु नाथ! विराजहु आजहु, आ जहु ई त्रयताप नसाई
का समता तुमरी! उर माँ सिय-भ्रात के साथ हैं रामु गोसाई ।।१।।

घेरत फेरत जे भवजाल, न हेरत टेरत ही सति भाऊँ
भे भय जाल विहाल निहाल, पुकारत अंजनि लाल को नाऊँ
आवत गावत पावत जो मन भावत छावत नेह को ठाँऊ
केशरिनन्दन-कीरति की रति की महिमा कहि नाहि अघाऊँ ।।२।।

जे छलछन्द, हटैं दुख दंद, कटैं जग फन्द सुने जसु तेरो
पंच विकार निकारहु हे! उपकारहु नाथ सबै मिलि घेरो
को महिमा कहि पाई तुमारि, फुरै रघुराई बदैं जसु तेरो
काते कहौं? विसराइ तुम्है, मैं परयों चरना प्रभु! हेरो-न हेरो ।।३।।

वारिधि लाँघि गये पुर में, उर में धरि रामु को जात सिहाहीं
रूप अनूप धरे सिगरे, बिगरे प्रभु काज संवारत जाहीं
बाग उजारिकै, लंकहि जारिकै, गे जहँ मातु रहीं बिलखाहीं
सीय पे जाइके माथ नवाइके, चीन्ह लै धाइके गे प्रभु पाहीं ।।४।।

पूँछत राम "कहौ कपि कइसन, सीय बितावत है दिन राती
जारेउ दुर्गम लंकपुरी केहि भाँति? है धूर्त निसाचर जाती"
"ऐसी विपत्ति विहाल है मात बतावत नाथ बिदारत छाती
आनहु बेगि मोरी जननी-दुखताको मैं नाथ कहौं केहि भांती ।।५।।

डारि जबै मुदरी तरु ते, सिय जानि अंगार हिये हरषानी
अंकित राम को नाम लख्यो, रचि जाइ न मायहु ते अनुमानी
को सकि पाइ विचिन्तत जानकी, बोलेउ कीस मनोहर बानी
रामहि राम उचारि कह्यो सब, नैनन नीर नहाइ अघानी" ।।६।।

वारि विमोचित राजिव नैन, कहैं धरि धीर "सुनौ हनुमन्ता"
"जौ मन कर्म वचे मम आश्रय, ते सिगरे दुख दन्द निहन्ता"
सीस धरे कपि के कर पंकज, सो शिव पै नहि जाइ भनन्ता
जानेउ नाथ प्रसन्न तबै, सिर नाइ उचारयो "सुनौ भगवन्ता" ।।७।।

तोरे प्रतापहिं नाघेउँ सिंधु उजारेउँ बाग प्रजारेउँ लंका
मारेउँ धूर्त्त निसाचरहूँ नहि हारेउँ तोरे प्रताप असंका
श्री रघुवीर सिहाइ कहैं "जसु बाढ़इ तोर सुनौ बलबंका
संकर वन्दि कह्यो कपि रीछन "आजु बजावहु लंक पै डंका" ।।८।।

हे बल बुद्धि प्रदाता प्रभो! रघुबीर के काज सदा द्रुतगामी
दैत्य निकन्दन! हे जगवन्दन! केशरिनन्दन नाम भजामी
कंचन वर्ण-महाबलधाम! हे पूरन काम नमामि नमामी
नाहिं बिसारउँ तोहि कभौं-अब मोरे मते यहइ भावइ स्वामी ।।९।।

आरती शिवराम जी की

जय जय शिव रामा साई! जय जय शिव रामा
जय जय जय शिव रामा-जय पूरन कामा -साई॰ ।।१।।

जयतु उमेश प्रभो-साई-जयतु रमेश विभो
तव चरननि चित लागै-देहि विभूति उभौ -साई॰ ।।२।।

उमा रमन सुर साई-रमा रमन साई
उभय चरन रति अविरल-हुलसइ रघुराई -साई॰ ।।३।।

चौमुख दियना वारति-रति आठहुँ यामा
हे निष्काम सकामा- जय जय सुख धामा -साई॰ ।।४।।

बाम अंग सिय सोहत-इत श्री रघुराई
शैलसुता उत बायें-धनि धनि शिव साई -साई॰ ।।५।।

शिव शिव शिव कहि हुलसत -कौशल्या प्यारे
रमत राम पद पंकज-धनि धनि त्रिपुरारे -साई॰ ।।६।।

शंकर भगवान की जय।
सियावर राम चन्द्र की जय।।
।। श्री रस्तु ।।

भूमिका

पावन पुत्र अन्जनी लाल पृथ्वीलोक और देवलोक दोनो के गौरव हैं। समस्त सिद्धियों एवं निधियों के स्वामी होते हुये भी वीत रागी है। वल बुद्धि तथा ज्ञान के भण्डार होते हुये भी निरहंकारी है। ऐसे दिव्य गुणनिधान हनुमान जी भगवान श्रीराम और माता सीता की आज्ञा शिरोधार्य कर अजर अमर रुप में पृथ्वीलोक में विचरण करते हुये भक्तजनों को सन्मार्ग पर प्रेरित करने और उन्हे राम का साक्षातकार कराने का हेतु वने हुये हैं। कोटि कोटि जनों के इष्ट, सर्व समर्थ, महावीर अपने आराधकों के हृदयों में भाव सवलता के अजस्र प्रवाह के रुप में अनुभव किये जा सकते हैं।

पं० नित्यानन्द मिश्र जी द्वारा प्रस्तुत यह भाव विवेचन उनके हृदयगत भावों का सहज और सरल प्रकटीकरण है। वैसे तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने हनुमान चालीसा में हनुमत चरित्र का गायन जिस सहजता और सरलता के साथ किया है वह अनुपम है इसी कारण वह उपासको का लोकप्रिय स्तोत्र है परन्तु श्री मिश्र जी के भाव विवेचन में एक भक्त की आराध्य के प्रति तन्मयता झलकती है। जीवन की सार्थकता इसी में है कि उपासक-उपास्य में भेद न रहे। तन्यमता द्वारा ही यह स्थिति प्राप्त की जा सकती है। श्री हनुमान जी ने अपना परिचय एक स्थान पर इस प्रकार दिया है-

"देह दृष्ट्या तु दासोऽहं, जी व दृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्म दृष्ट्या त्वमेवाहमिति में निश्चिता मतिः।।"

राम के भक्त के रुप में दास्य भाव से उनकी अनन्य उपासना ही हनुमानजी का अभीष्ट था। राम काज ही उनका कार्य था- 'रामकाज लगि तव अवतारा' तथा 'रामकाज कीन्हे विनु मोहि कहां विश्राम', -कीन्ह चहऊ निज प्रभु कर काजा' आदि से जीवन का हेतु स्पष्ट होता है और उस हेतु की पूर्णता लक्षित होती है जब वे कहते है- 'राम कृपा भा काजु विसेषी' इतना ही नहीं तो 'सो सब तव प्रताप रघुराई, नाथ न कछू मारि प्रभुताई में अनन्यभाव की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है। ऐसे गरिमामय महिमामय उदात्त चरित्र वाले राम भक्त हनुमान के विषय में मिश्र जी का हृदय भावातिरेक से उत्फुल्लित होकर चालीसा के विवेचन के रुप में प्रस्तुत हुआ है। सुधी पाठक इसके माध्यम से बजरंगी के अद्भुत एवं आर्दश चरित्र का अवगाहन कर कृतकृत्य होंगे। यह पुष्प, ज्ञान यज्ञ को सुवासित ही नहीं अपितु प्रभु हनुमान की अहेतुकी कृपा से भक्त जनों को आह्लादित करेगा। आशा है सहृदय जन इस पुण्य प्रवाह के पावन सलिल को अंगीकार कर, इसका स्वागत करेंगे। श्री मिश्र जी को उनके इस मांगलिक कार्य के लिये पुनः पुनः साधुवाद।

डा० दयानन्द शुक्ल

श्री गणेशाय नमः
श्री दुर्गायै नमः
श्री शंकरः शं करोतु

"प्रभु की लघिमा"

श्रद्धा विश्वास प्रसूत प्रभो!
शिव नाभि प्रभा सम्भूत प्रभो!
शिव श्वास समीरोद्भूत प्रभो!
हे नाथ! सियापति दूत! प्रभो!
तव शक्ति असीम अकूत प्रभो!
साक्षात् सदा अनुभूत प्रभो!
प्रभु कारज ही उद्भूत प्रभो!
महिपुत्र! प्रभञ्जनपूत प्रभो!
तव नाम महाप्रतिभूत प्रभो!
महिमा महिमान! अभूत प्रभो!
भज भञ्जन सर्वाहूत प्रभो!

प्रभु की महिमा भला कौन कहै?
प्रभु की गरिमा भला कौन कहै?
प्रभु की प्रतिभा भला कौन सहै?
प्रभु की लघिमा अति पावन है।
मन भावन और लुभावन है।।

लघिमा लघुता को दिखावन है,
लघिमा प्रभुता से बचावन है,
लघिमा शिव ही शिव गावन है,
लघिमा से पराजित रावन है,
तिरहूति लली बलि जावन है।।
तव नाम ते नाहि अघावन है।

हनुमन्त लला! हनुमन्त लला!! हनुमन्त लला!!! ही जियावन है,
हनुमन्त लला! हनुमन्त लला!! हनुमन्त लला!!! कस पावन है!
तव! नाथ!! हे नाथ !!! अनाथ के नाथ!!!! नवाइ के माथं झुकावन है!
हनुमान्, जो मान, महाबलवान्, पंदारथ चारिउ पावन है।।

अथ हनुमान चालीसा–'भाव विवेचन'

"सुन कपि तोहि समान उपकारी।
नहि कोइ सुरनर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौ का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुन सुत तोहि उरिन मैं नाही।
देखेउं करि विचार मन नाही।।

तुलसीदास/रा०च०मा०/सु०का०/- भगवान राम के उद्‌गार अपने दूत के प्रति ये है भगवान राम के द्वारा सीधे हृदय से निकले शब्द, जो अपने सेवक, अपने दूत, अपने परम भक्त हनुमन्त लाल के प्रति सीता का पता लगाने के बाद लौटने पर जगजननी जनक लली सिया का सन्देश सुनने पर, भला और किससे वचनों या प्रमाणों की आवश्यकता है हनुमान जी की महिमा जानने समझने के लिये।

दोहा :- श्री गुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चार।।
बुद्धि हीनि तनु जानिके, सुमिरौं पवन कुमार।
बल बुद्धि विद्या देहु मोहि, हरहु कलेस बिकार।।

तुलसीदास जी कहते हैं -

"अपने ही गुरु के श्री चरणों रुपी कमलों का पराग या कमल पुष्प धूल से, रज से अपने मन के दर्पण को साफ करके, निर्मल कर श्री रामजी का स्वच्छ व निर्मल यश, जो मेरा मन अनुभव कर सका है-कहता हूँ बताता हूँ जो कि चारों पदार्थ देने वाला है-धर्म-अर्थ काम मोक्ष की मात्र श्रवण मनन या चिन्तन से प्राप्ति कराने वाला है।"

"यह तो मेरे मन ने अनुभव किया है किन्तु यह शरीर बुद्धि से हीन है-कोसों दूर है-यह भी अनुभव करता हूँ इसलिये बुद्धि बल और विद्या के निधान हनुमान जी को स्मरण करता हूँ कि हे रामदूत। हे अतुलित बल धाम। हे विशुद्ध विज्ञान। हे शंकर सुवन। हे अंजनी लाल। तुम्हे मातु जानकी ने अपना प्रथम पुत्र माना है-बल-बुद्धि-विद्या मुझे भीं दे दो, और क्लेश-विकार दूरकर दो-मैं तुम्हारे स्वामी का निर्मल चरित्र कहने जा रहा हूँ-यह सब तो तुम्हे जानकी जी के अमोघ आशीष से मिल ही चुका है - जब तुम्हारे स्वामी ही कहते हैं कि-

सुर-नर-मुनि आदि का शरीर धारण करने वाला कोई तुम्हारे समान उपकारी है ही नही तो मै उन्ही की यशोगाथा कहना चाह रहा हूँ-इतना वड़ा काम तुम्हारी मर्जी के बिना कैसे हो सकता है क्योंकि उनके द्वार पर तो तुम्हारा ही पहरा है-उन तक पहुँचने तो दो मेरे देवता! मेरे तन मन के देवता! अपने हृदय के समीप पहुँचने दो तभी तो मैं तुम्हारे हृदय स्थल में सिया रामलखन को कम से कम एक बार देख तो लूँ-वैसे मैं कैसे जानूँगा कि वे शान्त आकार के है, लेकिन भुजंग-शयन करते हैं, उनकी नाभि से आखिर कमल कैसे निकला है-शूकर खेत में मेरे गुरु कृपा सिन्धु, नर रुप हरि-नरहरि ने कई बार बताया है- कैसे सभी देवता उनके अधीन है-वही जगदाधार है-हम सभी को पालते पोसते हैं। सभी देवता भी उन्ही के ही सहारे रहते हैं। एकं बार उनका मेघ के समान-शिरीष पुष्प की आभा लिये- उनके अंगों की रुप माधुरी को छक कर पान करवा दो- जानकी रुप में अवतरित लक्ष्मी कमल भगवान् विष्णु का नितान्त निर्मल स्वरुप लखन भइया सहित दिखला दो- जब मेरे पूज्य गुरु के श्री चरणों की धूल "अमिय मूरिमय चूरन चारू" है तो सबका गुणगान निरन्तर करने वाले पूज्य गुरु के इष्ट देव राम जी के कमल नयनों में झँकवा दो- अखिरकार योगीजन भी उन्ही के ध्यान में क्यों और कैसे रमे रहते हैं ? :-

"और हनुमान जी ने साक्षात् सीता सहित दोनों भाइयों का दर्शन करवाया और तुलसी कृत कृत्य हो गये। उन्हे इससे बड़ी कौन निधि चाहिये थी। ऐसे ही अनेक दुर्लभ क्षण बार-बार तुलसी को जिस परम बली-अजर-अमर-गुननिधि अंजनीपुत्र पवनसुत नाम से विश्रुत-विख्यात रामदूत हनुमन्त लाल की कृपा से प्राप्त हुये- उन्ही की वन्दना में कहीं गई "चालीस चौपाइयाँ" जिन दोहों रुपी जिल्द में संग्रहीत हैं- "वहीं हनुमान चालीसा" नाम से विख्यात है और भक्तगण क्या-सभी की अमोद्य कवच की भाँति रक्षा कर रहा है क्योंकि जब राम ही कहते है कि उनके समान परोपकारी अन्य कोई नहीं है। तुलसी दास जी कहते हैं-
हे रामदूत!

1– जय हनुमान ज्ञानगुण सागर❁जय कपीस तिहुँ लोक उजागर

"हे ज्ञान तथा गुणों के सागर हनुमान जी की जै हो तीनो लोकों में विश्रुत कपीश्वर की जै हो"

2– रामदूत अतुलित बलधामा ❁ अंजनि पुत्र पवन सुत नामा

"आप राम जी के प्रिय दूत हैं, आप-सा परम वीर भला कौन हो सकता है आपकी माँ अंजनी हैं, पवन पुत्र के नाम से विख्यात हो क्योंकि आप वायु से प्रादुर्भूत हुये है, आप वायु पुत्र हैं तभी आप वायु के ही समान तीव्रता से उड़ लेते हैं। आपकी जै हो।"

3– महावीर विक्रम बजरंगी ❁ कुमति निवार सुमति के संगी

"आप बजरंगी, महावीर बिक्रम, कुमति का निवारण करने वाले हो, सुमति बनाने वाले हो - आपकी जै हो।"

4– कंचन बरन बिराज सुवेसा ❁ कानन कुण्डल कुंचित केसा

"कंचन की सी काया और जामा लिये, शुभ्र-स्वच्छ वसन धारण कियें कानों में कुण्डल पहने, घने कुंचित केशधारी रामदूत! आपकी जै हो।"

5– हाथ बज्र अरु ध्वजा बिराजै ❁ काँधे मूँजे जनेऊ साजै

"हांथों में बज्र और झण्डा शोभा दे रहे हैं, कन्धे पर मूँज का पवित्र जनेऊ धारण किये हैं। हे पवन तनय! आपकी जै हो।"

6– संकर सुवन केसरी नन्दन ❁ तेज प्रताप महाजग वन्दन

"आप परम उपकारी हैं, आप शिव तत्व (कल्याणकारी तत्व) से उत्पन्न हुये है तभी आप शंकर सुवन के नाम से विख्यात हो। हे केसरी नन्दन। केशरी लाल। तेज और प्रताप साक्षात् झलक रहा है तभी तो "संकर जगद् वंद्य जगदीसा के अंश से उद्भूत, उन्ही की भाँति राम को अपने हृदय में छिपाये जगत् का उपकार करते हो। दुष्टों का विनाश करते हो- सारा जगत क्यो न आपकी वन्दना कर कृत कृत्य हो।

7– विद्यावान गुनी अति चातुर ❁ रामकाज करिबे को आतुर

"आप विशुद्ध विज्ञान हैं- विद्या युक्त है, गुणों की खान हैं, परम चतुर हैं तभी तो सीता की खोज के समय समुद्र के भीतर रहकर कपट करने वाले निशिचरी के मन की बात छल कपटकर अपनी तरफ सीचने और फ़िर खा जाने वाली राक्षसी को उसका फल तुरन्त ही प्रदान कर दिया। और अपने लक्ष्य की ओर पुनः बढ़ा चलने वाले बजरंगी। आपकी जै हो।"

8– प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया ❁ राम लखन सीता मन बसिया

"आपको तो अपने प्रभु का प्रिय उज्वल चरित्र ही सुनने में रस आता है-क्यों न हो ?-राम-लखन-सीता स्वयं हृदय में विराजमान हैं तो भला मैं अन्यत्र क्यों भटकूँ-आप ही की वन्दना क्यों न करुँ ? हे बलवीर! आपकी जै हो।"

9– सूक्ष्म रुप धरि सियहिं देखावा ❁ बिकट रुप धरि लंक जरावा

"आपने मातु जानकी के सामने परम सूक्ष्म रुप प्रकट कर अपनी लघिमा एवं गरिमा एक साथ ही दिखाकर माँ की महिमा और गरिमा को बढ़ाया है तभी तो आप राम नाम की महिमा-गरिमा रावण की लंका में प्रकट कर आग की लपटों में झोंककर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते ही रहे। हे संकट मोचन। आपकी जै हो।"

10– भीम रुप धरि असुर संहारे ❁ राम चन्द्र के काज सँवारे

"भीम स्वरुप धारण कर अपने असुरों को मसल कर रख दिया। कितनी ही बाधायें आई, आप सभी को लांघते हुये अपने हृदय के राजा के कार्य पूरे किये। क्यों कि वह सब तो आपका ही निजी कार्य था आप उनके सेवक जो ठहरे-हे रामदूत-

"ताकर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा नसो तेहि कारन गिरजा।।" और आपने आग बुझाने के लिये समुद्र में छलाँग नहीं लगाई, प्रत्युत आपने "सदा क्षीर सागर शयन" लक्ष्मीकान्त को उनके काज में हुई प्रगति तत्क्षण बता देना चाहते थे हे संकट मोचन! आपकी जै हो।"

11– लाय सजीवन लखन जियाये ❁ श्री रघुबीर हरषि उर लाये

"सुषेण वैद्य को लंका से लाकर उनकी सुझाई संजीवनी लाकर लखन लाल के प्राणों की रक्षा करने का श्रेय भगवान् ने आप ही को दिया और हर्षातिरेक में हृदय से लगा लिया। उस समय अश्रुपूर्ण राम के नयन कमल देखते ही बनते थे।"

12– रघुपति कीन्हीं बहुत बड़ाई ❁ तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई

"राम जी ने आत्म बिभोर होकर अत्यन्त भावुक होकर बोले हे तात! तुम्हारी तो अकेले भाई भरत ही से की जा सकती है। तभी तो जामवन्त जी ने कहा है "राम काज लगि तब अवतारा" अर्थात् रामजी के कार्यो को तुम्हारे बिना कौन पूरा कर सकता है, यही सोच समझकर आपका अवतार हुआ। हे अजर ! हे अमर ! आपकी जै हो ! जै हो !! जै हो !!!

कृ॰पे॰उ॰

13– सहस वदन तुम्हरो जस गावै ❁ अस कहि श्रीपति कण्ठ लगावै

14– सन कादिक ब्रह्मॉदि मुनीसा ❁ नारद सारद सहित अहीसा

"शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक शेष सहस मुख गाई
"तुलसिदास" मारुत सुत की प्रभु निज मुख करत बड़ाई
भजुमन रामचरन सुखदाई"

"शिव सनकादिक ब्रह्मादिक देवगण मुनि नारद एवं सरस्वती शारदा स्वयं अपने ही श्री मुख से और स्वयं शेषजी हजार मुखों से जिन की यश गाथा कहते हैं-धन्य हैं वे रामजी के दूत मारुत सुत, जिनकी श्री महिमा का बखान कर स्वयं श्रीपति अपने गलेसे लगाकर विभोर होकर अश्रु गिराने लगते हैं। धन्य हैं बड़भागी आप, राम जी के चरण सेवक और उनके दुलारे! आपकी जै हो।"

15– जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते ❁ कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते

"और साथ ही यम-कुबेर-दिकपाल-जो भी जहाँ हैं-वही से वेसब आपकी स्वामिभक्ति एवं निर्मल चरित्र का गुणगान करते हैं।-उसे कहने का सामर्थ्य कबियों में कहाँ से हो सकता है चाहें वे कितने ही योग्य-विलक्षण क्यों न हों-आपके उपकारों को कहाँ तक-किस सीमा तक गिनाने का सामर्थ्य कोई कर सकता है-आपकी जै हो।"

16– तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा ❁ राम मिलाय राज पद दीन्हा

17– तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना ❁ लंकेस्वर मये सब जग जाना

"आपके उपकार की बदौलत ही सुग्रीव से राम का मेल कराकर उनका जयछत्र वापिस कराया। आपकी सलाह विभीषण ने क्या मानी-परमशत्रु रावण का लघु भ्राता होते हुये भी-राम के चरणों की रज माथे में लगाते ही लंका का राज्य प्राप्त किया-यह तो सारे संसार की जानकारी में हैं-"

"कपि सुग्रीव बन्धु भय व्याकुल तिन जय छत्र फिराई
रिपुको अनुज विभीषण निशिचर-परसत लंकापाई
भज मन राम चरन सुखदाई"

☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆

"सोइ संपदा विभीषणहि-सकुचि दीन्ह रघुनाथ"

18– जुग सहस्त्र जोजन पर भानू ❁ लील्यो ताहि मधुर फल जानू

"चार सहस्र योजन से ही लाल मधुर फल समझकर अपने उदरस्थ कर लिया और चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार छा गया-सभी देवों की बार-बार प्रार्थना-मान मनौ वल के बाद ही आपने सूर्यदेव को मुख से

बाहर कर संसार को पुनः प्रकाशित किया। आपकी अन्नत महिमा भला कौन नहीं जानता- आपकी जै हो!

19– प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं ❁ जल घिलाँघि गये अचरज नाहीं

"राम जी की मुद्रिका आपने मुख में रखा और समुद्र लाँघकर लंका पहुंच गये। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि जब प्रभु की मुद्रिका आप मुख में लिये है-स्वयं अपने स्वामी को ह्रदय में बिठाये है- जो सभी को भव सागर से पार उतारता है उसे ही साथ लिये आप लाँघकर पार हो गये-भला इसमें किसी को आश्चर्य क्यों होवे। धन्य हो संकट मोचक! आपकी जै हो! आपकी जय हो!!"

20– दुर्गम काज जगत के जेते ❁ सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते

"संसार के जितने कार्य असम्भव जैसे लगते है- वे सब आपकी कृपा से सम्भव तथा आसानी से सम्पन्न हो जाते हैं! आपकी जै हो।"

21– राम दुआरे तुम रखवारे ❁ होइ न आज्ञा बिनु पैसारे

"राम को अपनी कथा व्यथा सुनानी हो तो भी आपकी मर्जी बिना कैसे सम्भव है जब उनके द्वार आपका सजग पहरा है और बिना आपकी आज्ञा द्वार के आगे कोई कैसे बढ़ पायेगा-कृपा करो-और हमें भी उनके दर्शन करवाकर कृतार्थ कर दो हे कपीश्वर बंजरगी! आपकी जै हो।"

22– सब सुख लहै तुम्हारी सरना ❁ तुम रच्छक काहू को डरना

"जब आपकी शरण में आने से ही सभी दैहिक-दैविक-भौतिक सुख सुलभ हो जाते है तो मैं आपकी ही शरण में हूँ अब आप ही रक्षक हो फिर किस बात का डर हो। हे कृपानिधान हनुमान! आपकी जै हो।"

23– आपन तेज सम्हारो आपै ❁ तीनों लोक हॉक तें काँपै

"आपके परम् तेजवान् स्वरुप के आगे तीनों लोक चकाचौंध में पड़ कर उनकी ज्योति आपकी ही तेजोमयी आभा में विलीन हो जाती है। उस तेज को आप ही स्वयं सम्हाल पाते हो! हे परम तेजस्विन्! आपकी जै हो।"

24– भूत पिशाच निकट नहिं आवै ❁ महावीर जब नाम सुनावै

25– नासै रोग हरै सब पीरा ❁ जपत निरन्तर हनुमत बीरा

"[illegible]का नाम सुनाते ही भूत-पिशाच निकट नही आ पाते और [illegible] करने से रोग जड़ से चला जाता है और सारी [illegible] है। हे हनुमत् वीर! आपकी जै हो।"

कृ०प०उ०

26– संकट ते हनुमान छुड़ावै ❁ मन क्रम वचन ध्यान जो लावै

"अपने मन से, कर्मो से, वाणी से जो आपको ध्यान में लाता है, उसको संकट से आप खुद ही उवार देते हो" आप धन्य हैं, आपकी जै हो।"

27– सब पर राम तपस्वी राजा ❁ तिनके काज सकल तुम साजा

28– और मनोरथ जो कोई लावै ❁ सोइ अमित जीवन फल पावै

"सबके नाथ-श्रीनाथ-रघुनाथ जी जो स्वयं तपस्वी राजा हैं, उनके सारे कार्य आपने ही तो सँवारे है- तो भला और प्राणी अपने मन में कोई कामना करे-वह क्यों न पूरी होगी-उसे भी असीम-अनन्त जीवन का फल आप देते हो! आपकी जै हो।"

29– चारों जुग पर ताप तुम्हारा ❁ है परसिद्ध जगत उजियारा

"चारों युगों में आपका उज्जवल प्रताप, सर्वविदित है हे तेजवान्। हे प्रतापवान् आपकी जै हो।"

30– साधु सन्त के तुम रखवारे ❁ असुर निकन्दन राम दुलारे

"साधु सन्तो की आप ही रक्षा करते हैं क्योंकि जब वे ध्यानमग्न होकर रामजी को अपने हृदय में धारण करते हैं तो आप स्वतः ही वहाँ उपस्थित उनकी चारों तरफ से सुरक्षा करते हो। असुरो के विनाशक रामजी के आप प्यारे दुलारे हैं।आपकी जै हो।

31– अष्ट सिद्धि नवनिधि के दाता ❁ अस वर दीन जानकी माता

"आठो सिद्धियों, नवों निधियों के देने वाले हो, ऐसा आशीष माँ जानकी ने स्वयं अपने श्रीमुख से आपको दे रखा है।

32– राम रसायन तुम्हरे पासा ❁ सदा रहो रघुपति के दासा

"आप सदा जगपति-रघुपति-सीतापति के चरणों की सेवा में लगे रहते हो तभी तो उनके चरणों की धूल "राम रसायन" आपको सरलता से उपलब्ध हो जाती है तो भला कौन सा दैहिक-दैविक-भौतिक रोग ठीक नहीं होगा?"

33– तुम्हरे भजन राम को भावै ❁ जनम–जनम के दुःख विसरावै

34– अंतकाल रघुपति पुर जाई ❁ जहाँ जन्म हरि भक्त कहाई

"जगदाधार-शिवाधार-राम जी को बस आप ही के भजन रुचि कर लगते हैं, क्योंकि वे जन्म जन्मान्तर के दुःखों को दूर करने वाले है। भव सागर के तारन हार ही अपने श्रीमुख से आपकी प्रशंसा करते हैं तो भला दुःखों, त्रय तापों की क्या विसात है जो आपके नाम के श्रवण मात्र से भी ठहर सकें! दुःख तो दूर ही होते हैं-यह नश्वर शरीर छुटने के बाद भी वैकुण्ठ धाम को प्राप्त होता है और जब भी-जहाँ भी जन्मता है- उसे राम-भक्ति प्राप्त होती है।

कृ०प

35– और देवता चित्त न धरई ❁ हनुमत् सेइ सर्व सुख करई

36– संकट करै मिटै सब पीरा ❁ जो सुमिरै हनुमत बलबीरा

"फिर भला दूसरे देवता को मन में लावे या न लावे-क्या अन्तर पड़त आपकी सेवा से ही सभी सुख प्राप्त कर लेता है। सारे संकट दूर हो जा हैं ऐसा आपके स्मरण का पुण्य एवं अक्षुण्ण प्रभाव है! हे हनुमन्त लाल आपकी जै हो।"

37– जै जै जै हनुमान गोसाई ❁ कृपा करहु गरु देव की नाई

"हे मेरे हृदय के स्वामी! मेरे इष्टदेव! हे हनुमान्! आपकी जै हो! ज हो!! जै हो!!! गुरुदेव की भाँति कृपा कीजिये जिससे मुझे आपके ध्यान चिन्तन-मनन-पूजन मात्र से ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश-तीनों की कृपा प्राप्त हो जाय- जिससे महामोह का सघन अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ है-सूर्य की किरणों द्वारा अंधेरा छँट जाता है-वैसे ही गुरुदेव के श्रीवचन हमारे मैंहामोह का अन्धकार दूर करें। आप चरण धूल हमें गुरु वन क प्रदान कर दो जिससे भव रोगों का नाश हो जाय"

38– यह सतबार पाठ कर जोई ❁ छूटहि बन्दि महासुख होई

"इसे सौ बार पाठ करे-कोई भी हो - बन्दि गृह से मुक्त होकर उ परम सुख प्राप्त हो"

39– जो पढ़े यह हनुमान चालीसा ❁ होय सिद्ध साखी गौरीसा

"जो यह हनुमान चालीसा पढ़े, निश्चय ही वह सिद्ध हो, उसव वाणीं में सिद्धि प्राप्त हो-साक्षात् शिव ही इसके साक्षी है क्योंि आप शिव हो! शिव ही हो!! शिव ही शिव हो!!!"

40– तुलसीदास सदा हरि चेरा ❁ कीजै नाथ हृदय महुँ डेरा

"तुलसीदास जी कहते है- आप सदैव श्री हरि के सेवक रहें हैं, नाथ- मेरे हृदय में डेरा डालकर रहिये तो इसी बहाने सानुज सियारा भी मेरे हृदय डेरे में बस जायँ। आपकी कृपा हमें राम की भक्ति में ली करे।

दो०- पवन तनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप
राम लखन सीता सहित हृदय बसहु सुर भूप

"हे पवन पुत्र! हे संकट मोचन! हे मंगलकारी रूप धरे मेरे उपकार अंजनी लाल! कृपा कर दो तो राम लखन सीता सहित मेरे हृदय में ब गैर मेरा भी कल्याण हो जायेगा।

सियापति राम चन्द्र की जय

"इति हनुमान चालीसा"

प्रथम संस्करण
महाशिवरात्रि, 1 मार्च 2003, दिन शनिवार
फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी
विक्रम सम्वत् 2059

मुद्रक :

हिन्दुस्थान प्रिंटिंग प्रेस
अस्पताल रोड, लखीमपुर-खीरी ☎ :255636

मूल्य 55=00 रुपया